भागवत दर्शन खंड ६५

श्री ध्रुव नारायण

भागवत दर्शन

खण्ड ६५

भागवती स्तुतियाँ (३)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन भागवतार्थं सुदर्शनम् ॥

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
सङ्कीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

मुद्रक
भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, झूसी (प्रयाग)

प्रथम संस्करण } मार्गशीर्ष, संवत् २०१३ { मूल्य १)

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	स्तुति प्रार्थना भूमिका	
४३	हंसगुह्य-स्तोत्र (३)	१
४४	वृत्रभय से भयभीत देवी की विष्णु स्तुति	६
४५	देवताओं द्वारा दयानिधि का स्तुति (१)	१६
४६	देवताओं द्वारा दयानिधि का स्तुति (२)	२४
४७	वृत्रासुर कृत भगवत् स्तुति	३६
४८	राजा चित्रकेतु को नारदजी द्वारा उपदिशत स्तोत्र	४६
४६	राजा चन्द्रकेतु कृत संकर्षण स्तुति (१)	५४
५०	राजा चन्द्रकेतु कृत संकर्षण स्तुति (२)	६१
५१	हिरण्यकशिपु कृत ब्रह्म स्तुति	७०
५२	श्री प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (१)	८०
५३	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (२)	८६
५४	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (३)	६७
५५	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (४)	१०४
५६	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (५)	१११
५७	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (६)	१२२
५८	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (७)	१३१
५६	प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (८)	१३६
६०	गजेन्द्र कृत हरि स्तुति (१)	१४५
६१	गजेन्द्र कृत हरि स्तुति (२)	१६१
६२	गजेन्द्र कृत हरि स्तुति (३)	१६८
६३	ब्रह्मादि देवों द्वारा अजित स्तुति (१)	१७६
६४	ब्रह्मादि देवों द्वारा अजित स्तुति (२)	१८७

स्तुति प्रार्थना

(भूमिका)

तत्तेऽर्हत्तम नमः स्तुति कर्म पूजाः
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किम्
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥
(श्री भा० ७ स्कं० ९ अ० ५० श्लो०)*

छप्पय

नहिं बानी तैं व्यरथ बात बोलूँ बनवारी ।
सतत उचारूँ नाम विनय नित करूँ तिहारी ॥
नाम रूप शुभ धाम ललित लीला गुन गाऊँ ।
विषयिनि को तजि संग सरस पद पंकज ध्याऊँ ॥
कृष्ण कन्हैया कृपानिधि, करुनाकर केशव कहूँ ।
करत करत इस्तुति मरुँ, तुमरो ई आश्रय गहूँ ।

जीवन स्तुति मय हो, हमारे सर्व कर्मारम्भ प्रार्थना पूर्वक हों यही मानवता है। पशु पक्षी को खाने का पदार्थ मिले तो

---

* हे प्रभो ! पूजनीय ! कोई चाहे कि हमें परम हंसों को प्राप्त होने वाली भक्ति प्राप्त हो, किन्तु वह न तो आपको प्रणाम करता है न आपकी स्तुति करता है न सर्व कर्म समर्पण उपासना कथा श्रवण तथा ध्यान ही करता है। तो इन छै अंगों वाली आपकी सेवा के बिना उसे वह गति कैसे प्राप्त हो सकती है।

वह तुरन्त खाने लगता है, किन्तु मनुष्य सम्मुख भोजन आवे तो वह सबसे पहिले सबको भोजन देने वाले उस परम पिता परमात्मा को धन्यवाद देगा। उसने जो भी कुछ प्राप्त कराया मन ही मन उसे अर्पण करेगा। अन्न का कुछ भाग अन्य प्राणियों के लिये निकालेगा। तब उसे प्रभु का प्रसाद मानकर पावेगा। जो ऐसा नहीं करता खाद्य पदार्थ के आते ही सूकर कूकर की भाँति लपर लपर करके शीघ्रता से खाने लगता है। उस मनुष्य में और पशु में अन्तर ही क्या है।

पशु जो सामने आ जाता है। उसे पहिले तो वे शीघ्रता के साथ निगल जाते हैं। फिर शनैः शनैः बैठे बैठे जुगाली करते रहते हैं। निगले हुए को पुनः पचाने के लिये चर्वण करते रहते हैं। बैठे बैठे नींद आ जाने पर सो जाते हैं, उठने पर फिर जुगाली करते रहते हैं। उन्हें दिन रात आहार और निद्रा ये ही दो काम रहते हैं किन्तु मनुष्य खाने के पश्चात् पुनः आचमन करता है। उसे धर्म पालन के निमित्त कर्तव्य समझकर प्रभु प्रीत्यर्थ करता है। सायंकाल में पुनः स्मरण,सन्ध्या वन्दन करता है। भगवन्नाम कीर्तन करता है। सोने के पूर्व हाथ पैर धोकर पुनः भगवत् स्मरण करता है। फिर सोता है प्रातः उठते ही सर्व प्रथम प्रातः स्मरण सम्बन्धी स्तोत्र पाठ करता है। उसके रामकृष्ण, विष्णु, शक्ति, शिव, सूर्य तथा और भी जो इष्ट हो उनका स्मरण करता है तब संसार यात्रा में प्रवृत्त होता है शौच स्नान से निवृत्त होकर पुनः पूजा पाठ करता है। उसी ने मानव जीवन का यथार्थ मर्म समझा है इसके विपरीत जो उठते ही ला चाय, लाओ प्रातराश, फिर दूध लाओ जल पान लाओ यह बनाओ वह बनाओ चटनी अवश्य बने अमुक साग फल अच्छा नहीं था नमक कम था आज अच्छी तरह बने चट पटा हो मिरच अच्छी प्रकार पड़े। दिन भर इसी

का चिन्तन इसीका मनन इसीके लिये उद्योग इसी के लिये प्रयत्न कर रहे हों उनमें और पशुओं में अन्तर ही क्या रहा ।

पशु पक्षियों का भी रति का समय होता है। पशु असमय में संभोग नहीं करते। ऋतु काल में ही उनके मनमे रिरिंसा उठती है। उस समय वे आगा पीछा नहीं देखते पशु ही ठहरे इच्छा पूर्ति कर लेते हैं किन्तु मानव संयम से काम लेता है। वह संस्कार करता है भगवत् स्मरण करता है ब्रह्मा जी का ध्यान करता है। जो ऐसा न करके पशु चर्चा बरतते हैं समय असमय का कुछ भी ध्यान नहीं रखते काम के अधीन होकर गम्या अगम्या का विवेक खो देते हैं वे तो पशुओं से ही गये बीते हैं। उनमें और पशुओं में न्यायतः कोई अन्तर नहीं ।

मानव जीवन केवल खाने सोने और संन्तानोत्पत्ति रति सुख के लिये नहीं है। इससे तो परलोक का साधन किया जा सकता है। हमारे यहाँ इसलोक की श्रेष्ठता को कभी महत्व नहीं दिया गया था। इस लोक के भोग तो प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हो ही जायँगे हमें तो अपने पर लोक की चिन्ता करनी चाहिये। इसीलिये जिसके जीवन में दया धर्म परोपकार, सत्य, ब्रह्मचर्य त्याग वैराग्य तितिक्षा ईश्वर विश्वास आदि सद्गुण हों वही श्रेष्ठ माना जाता था। हमारे यहाँ बड़प्पन, धन, वैभव अथवा भोग सामग्रियों की प्रचुरता से नहीं आँका जाता था। जो जितना ही अधिक सद्गुणी होता था। जो जितना ही अधिक परलोक सिधारने के लिये सचेष्ट रहता था वह उतना ही अधिक आदरणीय माना जाता था। तभी तो सर्वस्व त्यागी पास में कुछ भी न रखने वाले केवल कौपीन मात्र से निर्वाह करने वाले दिगम्बर साधु सन्तों के सम्मुख बड़े बड़े चक्रवर्ती काँप जाते थे अपने मुकुट को उनके चरणों पर रखते थे।

संसारी भोगों की आसक्ति तो हमारे परलोक को बिगाड़ देती है। भोगों को भोग भावना से मत भोगो भगवत् अर्पण करके प्रभु प्रसाद समझकर परलोक का ध्यान रखते हुए त्याग भाव से भोगो "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा"। तुम्हें मिलेगा तो उतना ही जो तुम्हारे भाग्य में बदा होगा। फिर तुम मिथ्या अभिमान करके इन नाशवान् असत् भोगों के अहंकार से अपने परलोक को क्यों बिगाड़ते हो। ये संसारी भोग तो चार दिन के हैं। यहाँ अन्याय अत्याचार पापाचार के धन से कितना ही शरीर को पुष्ट कर लो यहाँ मन अशान्त रहेगा, परलोक में पापों का फल भोगना पड़ेगा। जो यहाँ परोपकार धर्म कार्य करेगा उसे परलोक में भी सद्गति प्राप्त होगी। जो यहाँ भोग में रत रहेगा उसे परलोक में उनका परिणाम भोगना होगा।

एक बार एक दूसरे ऋषि के साथ नारद जी भगवान् के नामों का अपनी स्वर ब्रह्ममयी वीणा पर कीर्तन करते हुए मर्त्य लोक में विचरण कर रहे थे। उत्तरा खण्ड के परम एकान्त रमणीय वन्य प्रदेश में वे स्वेच्छा से भ्रमण कर रहे थे। उसी समय वहाँ मृगया के लिये एक राजकुमार आया। राजकुमार अत्यन्त सुन्दर था। बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए था। उसके साथ अत्यन्त ही सुन्दरी सुकुमारी कोमलाङ्गी रमणियाँ थीं। सुवर्ण की पालकी में सुकुमोल गद्दे पर वह बैठा था अत्यन्त ही गुलगुले तकिये लगे हुए थे। बहुत से भृत्य आगे पीछे चलते रहते थे। मंत्री भी साथ थे। मन्त्री ने जब से वीणा बजाते हरि गुणगाते सामने आते नारद जी को देखा, तो उसने राजकुमार से कहा—"कुमार! ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र भगवान् नारद हैं इन्हें आप प्रणाम करें।" राजकुमार को अपने धन वैभव ऐश्वर्य तथा कुलीनता का अभिमान था। उसके मनमें आया हम राजपुत्र होकर वन वन में भटकने वाले एक साधु को सिर

क्यों झुकावें, किन्तु मंत्री वृद्ध थे। इनके पिता महाराज भी उनका आदर करते थे। इनकी बात तो माननी ही चाहिये। इसी लिये पालकी में बैठे ही बैठे अवहेलनाके साथ उसने कहा—"बाबाजी! डंडौत। नारदजीने उत्तर दिया—"राजपुत्र! चिरंजीव। हे राजपुत्र! तुम बहुत दिनों तक जीते रहो।"

राजपुत्र ने पता नहीं सुना या नहीं वह तो चला गया नारदजी आगे बढ़े। आगे उन्होंने सामने से एक मुनि बालक को देखा। शीत सहते सहते उसका सम्पूर्ण शरीर काला पड़ गया था। हाथ पैरों में बिवाई फट रही थी। शरीर रूखा रूखा था। मृग का एक चर्म ओढ़े था, मूँज की करधनी कमर में बँधी थी। शरीर पर भस्म लिपटी हुई थी हाथ में पलास का दंड था। सिर पर समिधाओं का गट्ठर रखा था। नारदजी को देखकर उसने समिधाओं का गट्ठर एक ओर रख दिया और बड़ी श्रद्धाभक्ति से अपने गोत्र का तथा अपना नाम लेकर उसने नारदजी को साष्टांग प्रणाम किया—"नारदजी ने हाथ उठाकर कहा—"मा जीव ऋषि पुत्रक! हे ऋषिकुमार! तू मर जा।" पता नहीं ऋषिकुमार ने नारदजी के आशीर्वाद का अर्थ समझा या नहीं वह एक ओर हाथ जोड़े खड़ा हो गया, नारदजी आगे बढ़े।

इतने में ही आगे से एक जटाधारी महात्मा हाथ में करताल लिये बड़े ही सुमधुर कण्ठ से भगवन्नाम कीर्तन करते हुए दिखायी दिये। उनके साथ और भी बहुत से नरनारी थे। वे सबके सब तन्मयता के साथ महात्मा जी के स्वर में स्वर मिलाकर बड़े भाव से कीर्तन करते जाते थे। साधु महाराज ने जब सम्मुख नारदजी को देखा तो उन्होंने भूमि में लोटकर उन्हें प्रणाम किया। नारद ने कहा—"जीव वा मर वा साधो! हे साधो! तू चाहे जीवित रह या भले ही मर जा।" इतना कहकर भ्रमणप्रिय नारदजी आगे बढ़ गये। जब तक नारदजी दीखते रहे, सन्त उनकी

ओर टकटकी लगाये देखते रहे, जब वे आँखों से ओझल हो गये, तो फिर अश्रु विमोचन करते हुए वे बद्रीनाथ की ओर बढ़ गये।

आगे नारदजी ने देखा एक व्याधा चला आ रहा है, शरीर पर मैले कुचैले फटे पुराने गन्दे कपड़े हैं, एक टोकरी में बहुत से पक्षी बन्द हैं, हाथ रक्त से सना है, वस्त्रों पर भी रक्त के छींटे हैं। मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। पशु पक्षी भी उसे देखकर भय से भाग जाते हैं। उसने नारदजी को देखते ही कहा—"बाबा! डंडौत।"

नारदजी ने कहा—"व्याध! मा जीव मा मर" हे बहेलिया! तू न तो जीवित रह न मर ही" व्याध इसे क्या समझे वह चला गया।

नारदजी के साथ जो दूसरे ऋषि थे अब उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने पूछा—"भगवन्! मुझे एक शंका है आज्ञा हो तो कहूँ।"

नारदजी उनके अभिप्राय को समझ गये, फिर भी बोले—"हाँ, हाँ, अपनी शंका को अवश्य कहें।"

ऋषि ने पूछा—"भगवन्! उस राजकुमार ने कितनी अवहेलना के साथ आपको प्रणाम किया, किन्तु आपने तनिक भी अपना अपमान अनुभव नहीं किया। प्रत्युत उसे चिरंजीव होने का आशीर्वाद दिया। इसके विरुद्ध उस ऋषिकुमार ने कितनी श्रद्धा के साथ, कितनी भक्ति से आपको साष्टांग दंडवत की उसे आपने शाप दे दिया—"तू मर जा।" फिर उन सन्त ने कितनी भक्ति दिखायी आपके प्रति। आपने उपेक्षा से कह दिया—"साधु! तू चाहे मर या जीवित रह।" उस नीचकर्मा व्याध को

आपने कह दिया तू न मर न जीवित ही रह। इसका रहस्य क्या है ?"

यह सुनकर नारदजी हँसे और बोले—"ब्रह्मन् ! ये संसारी भोग तो पूर्वजन्म कृतकर्मों से प्रारब्ध द्वारा प्राप्त हैं जो इन्हीं को सर्वस्व समझकर इनमें आसक्त रहते हैं, वे परलोक के सुख से वञ्चित रह जाते हैं। मनुष्य देह बड़ी दुर्लभ है। इस मनुष्य शरीर को पाकर जिसने अपने परलोक को नहीं सम्हाला। वह तो जीवित भी मृतक के समान है, जिन कर्मों से परलोक बने उन्हीं का आचरण करना चाहिये। ये संसारी भोग तो क्षणिक हैं, इनमें सुख नहीं क्षणिक सुखाभास है। मूर्ख लोग इस सुखाभास में ही फँसकर अहंकार के कारण अपने को सब कुछ समझने लगते हैं।

यह जो राजकुमार है इसे पूर्व जन्मकृत किन्हीं कर्मों से राजकुमार का शरीर मिला है। यदि वह सदाचार पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए प्रभु प्रार्थना करता, तो इसका यह लोक बना ही परलोक भी बन जाता। ऐसा न करके यह संसारी भोग में फँसा है कामिनी कांचन और यश कीर्ति पाकर अपने को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर प्राणियों की हिंसा कर रहा है। साधु पुरुषों की अवज्ञा करता है। जब तक जीवित है संसारी सुख भोग लें अन्त में तो इसे नरक की अग्नि में पचना ही है। ऐसे ही एक राजकुमार के अत्यन्त गोरे सुकोमल गुद गुदे हाथों को देखकर ढाह मार कर रोने लगे। किसी ने कारण पूछा तो संत ने कहा—हाय ! ये कैसे सुन्दर कोमल कमल का पंखड़ियों की भाँति हाथ हैं किन्तु इनसे सत्कर्म नहीं हो रहे हैं। ये निर्दयता पूर्वक नरक की धधकती हुई अग्नि में जलाये जायँगे बार बार तपाये जायँगे यही सोचकर मैं रो रहा हूँ। सो मुनिवर ! यह

राजकुमार जितने अधिक दिन जीवे उतना ही सुखों को भोगे इसी लिये मैंने इसे चिरजीवी होने का आशीर्वाद दिया।"

रही ऋषि पुत्र की बात सो किन्हीं सुकृत कर्मों से इसका जन्म पवित्र तपस्वी कुल मे हुआ है। यह जब तक जीवेगा तपस्या करते हुए शरीर को सुखाते हुए जीवेगा। अन्त में तो इसे तप लोक या और भी उच्च लोक या और भी उच्च लोकों में जाना ही है तो शीघ्र से शीघ्र यह इस काय क्लेश से छूट कर परलोक का सुख भोग करे इसीलिये मैंने अविलम्ब परलोक प्रयाण का वर दिया।

ये जो सन्त हैं इन्हें अपने लिये तो कुछ करना ही नहीं। न इन्होंने विवाह किया न बच्चे पैदा किये आठों पहर परोपकार के कार्यों में लगे रहते हैं। स्वयं भगवान के नामों को निरन्तर लेते हैं असंख्यों नर नारियों से लिवाते रहते हैं। इनका अपने लिये तो कोई कार्य है ही नहीं। ऐसेसंत जब तकपृथिवी पर रहेंगे। परोपकार करेंगे लोगों को भजन स्मरण में लगावेंगे भक्त गण इनकी पूजा अर्चना करते रहेंगे। मरने पर तो इनको उत्तम गति निश्चित ही है। इसीलिये मैंने कह दिया—"संत भगवान् आप तो कल्याण तथा सुख स्वरूप हो जहाँ रहोगे वहीं आनन्दा मृत की धारा बहाओगे भगवत स्तुति में ही तन्मय रहोगे आप के लिये जैसा ही यह लोक वैसा ही परलोक इस लिये आप चाहें यहाँ रहें चाहें वहाँ रहें जीवें चाहे मरें दोनों ही आपके लिये समान है।

रही व्याध की बात सो पूर्व जन्म कृत पापों से इसे यह अधम योनि मिली है। इस योनि में भी पुण्य तथा परोपकार न करके रात्रिदिन प्राणियों की हिंसा में ही निरत रहता है पशु-पक्षियों को निर्दयता पूर्वक फँसा कर उन्हें मार डालता है। इसे किसी के प्राण लेने में तनिक भी संकोच नहीं। इतनी हिंसा

करने पर भी न उदर भरने को पूरा टुकड़ा न तन ढकने को पूरा कपड़ा यहाँ रहेगा तब तक दुख पावेगा मरकर तो नरकों में जाना ही है इसीलिये मैंने कहा—तू न जीवित रह न मर ही।"

इस कथा का सार इतना ही है कि परलोक जिससे बने वे ही कर्म तो श्रेष्ठ हैं शेष कर्म तो वासना के विकार मात्र हैं। जो लोग मूर्ख हैं पशु बुद्धि हैं विषयी हैं वे तो न संत महात्मा के समीप जायँगे न इन भागवती कथाओं को पढ़ेंगे ही जो ज्ञानी हैं वे कर्तव्य अकर्तव्य से ऊँचे से ही उठ गये हैं उनके लिये भी उपदेश नहीं है शास्त्रों का उपदेश तो केवल मुक्ति की इच्छा वाले मुमुक्षुओं के ही लिये हैं जो न सर्वथा मूर्ख तथा विषय वासना लिप्त ही हैं और न पूरे ज्ञानी तथा भक्त ही हो गये हैं। जो परमार्थ की ओर बढ़ना चाहते हैं। जो उस दिव्य धाम का मार्ग खोज रहे हैं। उनसे मैं एकान्त में गंभीरता पूर्वक सोचने की प्रार्थना करता हूँ। लोग कहते हैं महाराज! भगवती कथा में तो बड़ी सरस चित्त लगने वाली कथायें होती थीं यह आप क्या नीरस प्रसंग लेकर बैठ गये। एक ही बात को बारबार दुहरा कर पुस्तकका कलेवर व्यर्थ बढ़ा रहे हो। एक बार हो गयी दो बार हो गयी तीन बार हो गयी अब बारम्बार वही वही बात आगे बढ़ो।

उनसे मेरा निवेदन है—"कथाओं का सार क्या? सम्पूर्ण कथाओं का सारांश तो यही है जिसने भगवान् की स्तुति प्रार्थना की वह जो सुखी हुआ जो भगवान् से विमुख हुआ वह सुखी हुआ जो भगवान् से विमुख हुआ वह दुखी हुआ। इतने बड़े महाभारत का सार इतना ही है कि अर्जुन ने निःशस्त्र श्री कृष्ण को अपनाया दुर्योधन ने संसारी अस्त्र शस्त्रों सुसज्जित सेना को लिया। दुर्योधन की पराजय हुई की विजय

हुई क्योंकि यतो कृष्णस्ततो जयः" जहां श्रीकृष्ण हैं वहाँ विजय इसी प्रकार सम्पूर्ण कथाओं का यही तात्पर्य है। इसी लिये भगवान् शुकदेव ने महाराज परीक्षित को सम्पूर्ण भगवत को कथाओं को सुनाकर अन्त में कहा देखो राजन ! मैंने जो तुम्हें इने बड़े बड़े प्रताप शाली राजाओं की उत्तम उत्तम कथायें सुनायी है वे केवल ज्ञान वैराग्य को बढ़ाने के ही लिये कही थीं। यह कथा ही परमार्थ नहीं है यह कथा तो वाणी का विलास मात्र हैं परमार्थ इनमें इतना ही है कि इन लोगों ने जैसा आचरण किया वैसा हमें करना चाहिये। हमें दुर्योधन का अनुकरण न करके अर्जुन का मार्ग ग्रहण करना चाहिये। इसी लिये श्रीमद् भागवत में स्तुतियों की भरमार है। स्यात् ही कोई ऐसी कथा होगी जिसके अन्त में स्तुति न हो अमुक ने कोई कार्य किया तुरन्त भगवान् की स्तुति की इस जीवन का क्या ठिकाना एक साँस बाहर निकली फिर लौटकर न आयी सब कुछ समाप्त इसी लिये भक्त बारम्बार यही प्रार्थना करते हैं—"हे प्रभो ! मेरा मानस हंस आपके पाद पद्म रूप पिंजड़े में अभी ही इसी समय प्रवेश कर जाय। आप कहेंगे इतनी शीघ्रता क्या है मरते समय प्रार्थना कर लेना। सो बात नहीं भगवन् ! प्राण प्रयाण के समय तो कंठ वात पित्त तथा कफ इन त्रिदोषों के कुपित हो जाने से अवरुद्ध हो जाता है। उस समय तुम्हारी स्तुति प्रार्थना करने का अवसर कहाँ है?

---

* कथा इमास्ते कथिता महीयसाम्,
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञान वैराग्य विवक्षया विभो .
वचो विभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ।
(श्री भा० १२ स्क० ३ अ० १४ श्लो०)

आप सोचें संसार में पुरुष के लिये सोचने की चिन्ता करने की वस्तु भगवान को छोड़कर और है ही क्या ? हमें यह शरीर मिलता है, वह हमारे अनेक जन्मों के लिये कुछ कर्म लेकर बनता है। जैसे किसी महाजन के यहाँ हमारे कई लाख रुपये रखे हैं' उसमें से उसने दश सहस्र रुपये देकर किसी व्यापर में लगा दिया। तो वे दश सहस्र तो हमारे निश्चित ही हैं,उनको हम बढ़ावेंगे तो वे फिर हमारी संचित धनराशि, में सम्मिलित हो जायगे। घटावेंगे तो वे घाटा साम्मलित हो जायगा। वे दश सहस्र तो व्यय करने ही होंगे। इसी प्रकार हमारे संचित कर्मों से एक जन्म के जो प्रारब्ध कर्म मिले हैं उनमें तो कुछ घटाव बढ़ाव हो नहीं सकता। उनके लिये चिन्ता तो व्यर्थ है, चिन्ता यही करनी है, कि हम भगवान् की शरण में जायँ, भगवान् की प्रार्थना करें।

आप सोचें, हम अधिक दिन जीवित रहें यह आपका सोचना व्यर्थ है आप जब गर्भ में थे तभी आपकी मृत्यु का दिवस, मृत्यु का कारण, मृत्यु का समय, मृत्यु का स्थान सब पहिले से ही निश्चित है, इस लिये मृत्यु की चिन्ता करना तो व्यर्थ है। मृत्यु समय पर आवेगी, अवश्य आवेगी आप लाख प्रयत्न करें, कि मृत्यु टल जाय तो नहीं टल सकती। उसका टलना असम्भव है। जो बात अवश्यम्भावी है, उसकी चिन्ता करना मूर्खता है।

हम जोवन में कौन से कर्म द्वारा निर्वाह करेंगे कौन कौन से कर्म हमारे द्वारा होंगे यह भी प्रथम से ही निर्णीत है, किन किन कर्मों द्वारा आप को यश मिलेगा, किन किन कर्मों से अपयश मिलेगा, यह निर्णीत बात है। आप चाहे कितना भी अच्छा कार्य करो यदि उसका यश आप के प्रारब्ध में नहीं है,

तो यश उसका किसी अन्य को ही मिलेगा। भाग्य की रेखपर मेख मारने की सामर्थ्य किसी की नहीं है।

सबसे अधिक चिन्ता हमें धनकी रहती है यदि चिन्ता करने से ही मिल जाता तो संसार में कोई निर्धन रहता ही नहीं है। धन तो मिलता है भाग्य से प्रारब्ध से। कुछ लोग कहते हैं, भाग्य वाद का सिद्धान्त स्वर्थियों ने बनाया है। हम तो धनका सबमें समान वितरण कर देंगे, हमारे शासन में न कोई धनी रहेगा न निर्धन सब समान हो जायेंगे। साम्यवाद का प्रचार करेंगे। उन बुद्धि की शत्रुओं से पूछा जाय, तुम करने वाले दूसरे, कराने वाले यह विषमता तो रह ही गयी। एक शाशक एक शाशित। तुम कहोगे कोई परम्परा गत शाशक न रहेगा, जनता जिसे योग्य व्यक्ति को भी चुन दे। वही शाशक होगा। अच्छा चुना हुआ ही सही। किन्तु चुनने वालों में भी तो बुद्धि समान होनी चाहिये, सो बात है नहीं। कोई अधिक बुद्धिमान होते हैं कोई अत्यन्त ही न्यून बुद्धि वाले। अधिक बुद्धिमान कम बुद्धिवालों को छलसे बलसे, कलाकौशल से अथवा सत्य, दया, आदि सद्गुणों से प्रभावित करके शाशक बन जायगा। कुछ लोग स्वभाव से उत्साही शासन के कर्मचारी बन जायँगे। आलसी बिना श्रमकिये हुए सुखपूर्वक भोजनादि की सुविधा चाहेंगे वे काम करने से चित्तको चुरायेंगे। शासन के कर्मचारी उन्हें मारेंगे, धमकावेंगे उन पर अपना धाक जमावेंगे। फिर समानता कहाँ रही। तुम कहोगे कामों में तो विषमता रहेगी है। सभी एक सा कार्य नहीं कर सकते। कोई बुद्धि जीवी रहेंगे कोई श्रम जीवी, किन्तु भोजन वस्त्र में सबको समानता रहेगी। यह नहीं कि एक तो नित्य माल उड़ावे, दूसरे को भर पेट चना भी न मिले। सो यह भी बात नहीं हो सकती। सब समान भोजन भी नहीं कर सकते। किसी का आहार अधिक किसी का कम। किसी को रोटी प्रिय है

किसी को दाल, कोई माँस का प्रेमी, तो किसी को स्वभाव से ही उससे अत्यन्त घृणा है। कोई फल से ही पेट भरना चाहता है कोई दूध पीकर ही रहना चाहता है, वस्त्रों की भी यही बात है सैनिकों के वस्त्र और होंगे, शासकों के और होंगे। कृषकों के दूसरे प्रकार के होंगे फल कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के और तरह के, स्त्रियों के भिन्न होंगे, फिर आप भोजन वस्त्र में समानता कैसे कर सकेंगे? हमने कारावास में देखा है। सब बन्दियों को एकसा भोजन वस्त्र देनेका नियम है। तोल तोलकर सबको समान भोजन दिया जाता है, एकसे वस्त्र दिये जाते हैं, किन्तु वहाँ भी तिकड़म चलती है। बहुत से चोरी चोरी से बगिया से मूली साग भाजी ले आते हैं, बहुत से चोरी से हलुआ पूड़ी बनाते हैं, बहुत से प्रहरियों को पैसे देकर चुपके से मिठाई मंगा लेते हैं। भोजन में, वस्त्र में, काम में समानताका सिद्धान्त स्वीकार करनेपर भी प्रत्यक्षसे असमानता है। अच्छा एक बात और भी है। जेलमें ७०।८० प्रतिशत ऐसे बन्दी होते हैं जिन्हें घरपर दोनों समय तो क्या एक समय भी पेट भरकर रोटी नहीं मिलती। किसी प्रकार रूखी सूखी रोटी सत्तू या मोटा भात खाकर निर्वाह करते हैं। यहाँ जेलमें दोनों समय उन्हें दाल भात रोटी, साग भरपेट मिलता है, फिर भी वे इस जेलमें स्वेच्छा से एक क्षण भी नहीं रहना चाहते, वे तो अपने घरपर स्वाधीन होकर एक समय आधे पेट ही रहना चाहते हैं। ये साम्यवाद वाले गाँवों के कारवास ही तो बनाना चाहते हैं। गाँवमें सब मिलकर खेती करें, सब खेतों पर श्रम करें, किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति न हो। किन्तु क्या ऐसा संभव है? संभव हो भी तो क्या इससे मानव सुखी हो सकता है? कदापि नहीं, प्राणी स्वतंत्र रहना चाहता है। कर्ताको स्वतंत्रता सबसे अधिक प्रिय है। चाहे उसके पास एक ही बीघा खेत हो,

किन्तु वह हो अपना हो। उसमें वह इच्छानुसार जो चाहें बोसके जब चाहे उसमें से पका कचा अन्न काट सके। उसकी अपनी निजी स्त्री हो उससे जब चाहे मीठी मीठी बातकर सके, जब चाहे लड़ झगड़ सके, उसका अपना निजी घर हो, अपने निजी बच्चे हों उन्हें जब चाहें प्यार दुलार कर सके जैसी चाहें शिक्षा दे सके, आप धन सम्पत्ति, भूमि, स्त्री, बच्चों को राष्ट्र की सम्पत्ति बनाकर व्यक्तियों को एक स्वत्व हीन बलपूर्वक काम कराने को विवश करोगे तो उसका दुःख और बढ़ जायगा। यह समानता क्या हुई घोर परतंत्रता हुई। प्राणी पेट ही भरना नहीं चाहता। वह और भी कुछ चाहता है। उसे प्यार चाहिये, स्वतंत्रता चाहिये, प्रत्येक बात पर उसे अंकुर अखरता है। इसका कारण यह है कि सबकी प्रकृति भिन्न भिन्न है। जब एकसा सबका रूप नहीं रंग नहीं, स्वभाव नहीं, प्रकृति नहीं, बुद्धि नहीं विद्या नहीं तो तुम समानता कर कैसे सकते हो। रूप, रंग, आकृति प्रकृति रहन सहन, विद्या, बुद्धि, स्वभाव, कार्य, क्षमता जब सभी में असमानता है, तो तुम साम्यवाद के स्वप्न देखते हो यह तुम्हारी अल्पज्ञता है, यह सृष्टि ही असमानता है साम्यावस्था में तो प्रलय होती है, गुणों में जब विषमता आरंभ होती है तभी सृष्टि का प्रवाह आरंभ होता है। जब सम्पूर्ण सृजन ही असमानता से आरंभ होता है, तो तुम सबका भाग्य एकसा कैसे कर सकते हो। सब के प्रारब्ध कर्मोंको सबके भोगों को समान कैसे बना सकते हो। यह तो मूर्खों को बहकाने को, अपनी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने को ईश्वर और परलोक में विश्वास न करने वाले कुछ नास्तिकों ने लोगों को भ्रममें डाल रखा है। नहीं वास्तविक बात तो यह है, प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति पृथक है। प्रत्येक के कर्म पृथक हैं, प्रत्येक का प्रारब्ध पृथक है। इसी प्रकार सब को धन भी समान नहीं मिल सकता। तुम्हारे भाग्य में जितना धन

होगा उतना तुम्हें जहाँ भी चले जाओगे वहीं मिलेगा वहीं मिलेगा। हम पहिले सुना करते थे बम्बई कलकत्ते में सोना बरसता है अमुक सेठ लुटिया डोर लेकर गये वहाँ जाकर करोड़पति हो गये। किन्तु हमतो कई बार बम्बई कलकत्ता गये हमने तो वहाँ कहीं सुवर्ण की वर्षा होती देखी नहीं। वहाँ जो जाता है, वही लखपती हो जाता हो ऐसी भी बात नहीं। हमने सहस्रों आदमियों को वहाँ बिना व्यपार के घूमते देखा बहुतों को धनहीन भी देखा। प्रारब्ध सभी के साथ रहता है। तुम्हारे पास एक घड़ा है, उसे चाहे तालाब में डुबोओ, कुआँ में डुबोओ, गंगाजी में डुबोओ या महासागर में डुबोओ, जितना बड़ा तुम्हारा घड़ा है। जल उसमें उतना ही आवेगा न अधिक न न्यून। मिठाइयों का पर्वत लगा है, किन्तु तुम उतना ही खा सकोगे जितना तुम्हारे पेटमें समावेगा। इसी प्रकार धन सम्पत्ति भी जितने तुम्हारे प्रारब्ध में लिखी है उतनी ही मिलेगी। जब यही बात है, तो धनके ही लिये सदा सर्वदा चिन्तित बने रहना कोई बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं।

यही बात विद्या के सम्बन्ध में है। प्ररब्ध में विद्या है तो तनिक से परिश्रम से आ जाती है, भाग्य में नहीं है तो कितना भी द्रव्य व्यय करो विद्या नहीं आती, नहीं आती। पूर्वजन्म में जो उपार्जित की है वही प्रारब्ध बनकर अग्रे धावति धावति आगे आगे चलती है।

मृत्युकी भी यही बात है, मृत्युका समय, पहिले से ही निश्चित है, समय पर मृत्यु आवेगी ही जो जनमा है वह मरेगा भी अवश्य ही। इसलिये मृत्युके विषय में भी चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं। इसीलिये शास्त्रकारों ने लिखा है।

आयुः कर्म च वित्तंच विद्या निधनमेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

अनुरूप करता है। किन्तु भगवत् स्मृति का सभी को समान रूप से भगवान् ने अधिकार दे रखा है। अर्जुन ने जब कुरुक्षेत्र के रणांगण में युद्ध करने से मना कर दिया। तब भगवान् ने अत्यंत ही दृढ़ता के साथ बिना ननुनच के कह दिया—"अरे, अर्जुन ! तू व्यर्थ बकवाद कर रहा है, तू अहंकार के वशीभूत होकर भले ही लाख बार कह कि मैं युद्ध नहीं करूँगा नहीं करूँगा। युद्ध तो बचा जी तुम्हें करना ही पड़ेगा। यह तो तुम्हारी प्रकृति तुमसे करा देगी। तुम्हारे प्रारब्ध में युद्ध करना लिखा है।" किन्तु यह बात एक भी बार नहीं कही कि तू भजन न भी करना चाहेगा तो तुमसे बलपूर्वक करा लिया जायगा। उसके लिये तो विधि वचन दिया है। भगवान कहते हैं—"मामनुस्मर युद्धय च"। अर्थात् युद्ध तो तू अपनी प्रकृति के अनुसार करेगा ही, किन्तु मेरा स्मरण भी कर। "सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज" तू सब सांसारिक कर्तव्यों की ओर से पराङ्मुख होकर मेरी शरण में जा "तमेवशरणं गच्छ सर्वभावेन भारत" हे अर्जुन ! तू सर्वभाव से ईश्वर की ही शरण में जा। ऐसे एक नहीं अनेक वाक्य हैं, इनसे यही प्रतीत होता है। संसारी भोग तो प्रारब्धानुसार बिना प्रयत्न के भी मिल ही जायँगे। जैसे रोगों के लिये कोई भी प्रयत्न नहीं करता, किन्तु बिना प्रयत्न किये ही शरीर में अनेक रोग प्रारब्धानुसार आ ही जाते हैं, जब संसारी दुख बिना बुलाये आ जाते हैं, तो संसारी सुख भी बिना प्रयत्न के बिना बुलाये आ जायँगे, उनके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है, जीव का एकमात्र पुरुषार्थ प्रभु प्राप्ति ही है। इसीलिये मुकुन्दमाला में भगवान् की स्तुति करते हुए एक भगवतभक्त कहते हैं।

प्रभो ! मेरी धर्म में आस्था नहीं है। अर्थात मेरे पास धर्म नहीं है, मुझसे कोई धर्म कार्य बना ही नहीं, मेरे पास धन भी नहीं है, निर्धन हूँ, मेरे समीप संसारी काम भोगों की सामग्री भी

नहीं है। ये वस्तुएँ नहीं हैं, तो मैं इनकी चिन्ता भी नहीं करता। आपसे इनकी याचना भी नहीं करता। मेरे पूर्वकर्मों के अनुसार ये वस्तुएँ भाग्य में होंगी तो मुझे स्वतः प्राप्त हो जायगी। भाग्य में न होंगी तो न प्राप्त होंगी। इस विषय में तो मेरा कोई निवेदन है ही नहीं। मैं यह भी नहीं माँगता कि मेरी मोक्ष जाँय जन्म-मरण का बन्धन मिट जाय जन्म होने हो तो मेरे हो जन्म भी होवे रहे। किन्तु हे मेरे सच्चे स्वामी! हे मेरे प्यारे भगवन्! मेरी एक ही प्रार्थना है, एक ही विनय है मैंजब जब जिस जिस योनि में कर्मानुसार जन्मग्रहण करूँ तब तब उस उस योनि में आपके पादपद्मों में मेरी अविचल निश्चला भक्ति बनी रहे, आपके चरणारविन्दों को मैं भूलने न पाऊँ।

हे प्रभो! मेरी भी यही प्रार्थना है आज मैं तुम्हारी प्रार्थनाम को भूल कर प्रारब्धानुसार लोक रंजन के कार्यों में लगा हूँ। आपको प्रसन्न करने की चिन्ता छोड़कर लोक को प्रसन्न करने की चिन्ता छोड़कर लोक को प्रसन्न करने का पुनः पुनः प्रयत्न करता हूँ इसका परिणाम क्या होगा। पुनः लोकों की प्राप्ति। अब करूँ भी तो क्या करूँ, मेरे प्रारब्ध मुझे एकान्त भाव से आपका भजन चिन्तन करने ही नहीं देते। किन्तु प्रभो! यदि इस लोक रंजन में आपको भूल जाऊँ तब तो मेरा सब चौपट हो जायगा मेरी जीवन नौका के एक मात्र पतवार प्रभो! तुम ही तो हो। यद्यपि मैं भटक जाता हूँ लक्ष्य च्युत बन जाता हूँ किन्तु यदि आप मेरे जीवन में न रहो तो ऐसे जीवन को शतशः धिक्कार है ऐसे लोकरंजन पर थू थू। जीवन में तुम्हारी स्मृति बनी रहे तुम्हें न भूलने पाऊँ वेमन से सही तुम्हारे भुवन पावन नामों को निरन्तर रटता रहूँ तुम्हें ही अपने जीवन का सर्वस्व समझूँ। यह संसारी प्रतिष्ठा तो चार दिन की है। आज है कल नहीं आज जो साधु साधु

कहते हैं कल वे ही धिक् धिक् करने लगते हैं। स्थायी तो आप ही आपके सुमधुर नाम हैं आपके परम पावन गुणानुवाद हैं। उनमें भक्ति हूँ मरते समय प्राण त्यागते समय आपके चरणों से निसृत गंगा हों या आपकी पटरानी यमुना हों दोनों हों। उनकी वीचियों को देखते हुए आप के सुमधुर नामों का उच्चारण करते हुए आपके विश्वविमोहन रूप का चिन्तन करते हुए इस नश्वर शरीर का त्याग करूँ यही इस दीन हीन मति मलीन निष्किञ्चन जन की आपके पावन पादरविन्दों में प्रार्थना है।

> नास्था धर्मे न वस्तुनिचये नैवकामोपभोगे।
> यद् भाव्यं तद् भवतु भगवन्! पूर्व कर्मानुरूपम्॥
> एतत् प्रार्थ्यं मम बहु मतं जन्म जन्मान्तरेपि।
> त्वत् पादाम्भोरुहं गता निश्चला भक्तिरस्तु॥

छप्पय

> मरन समय में नाथ? गात तव पद जल माही।
> बानी बिनती करै निरन्तर नामनि गाही॥
> हे चित चोर? किशोर! चित चिन्तै तव चरननि।
> सम्मुख ललित त्रिभंग दिखावें मनहर चितवनि।
> दृश्य जगत दीखे नहीं, मुख तैं तव नामनि भजूँ।
> गङ्गा यमुना के निकट, जा नश्वर तनकूँ तजूँ॥

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
मार्ग शीर्ष कृ० ३। २०१३ } प्रभुदत्त

॥ श्रीहरिः ॥

(व्रजभाषा में भक्तिभाव पूर्ण, नित्य अनुपम पाठ के योग्य महाकाव्य)

श्रीभागवतचरित

(रचयिता—श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

श्रीमद्भागवत, गीता और रामायण ये सनातन वैदिक धर्मावलम्बी हिंदुओं के नित्य पाठ के अनुपम ग्रंथ हैं । हिन्दी भाषा में रामायण तो गोस्वामी तुलसीदासजी कृत नित्य पाठ के लिये थी, किन्तु भागवत नहीं थी, जिसका संस्कृत न जानने वाले भागवत-प्रेमी नित्य पाठ कर सकें । इस कमी को "भागवत चरित" ने पूरा कर दिया । यह अनुपम ग्रन्थ व्रजभाषा की छप्पय छन्दों में लिखा गया है । बीच बीच में दोहा, सोरठा, छन्द, लावनी तथा सरस भजन भी हैं । सप्ताह क्रमसे सात भागोंमें विभक्त है पाक्षिक तथा मासिक पाठ के भी स्थलों का संकेत है । श्रीमद्भागवत की समस्त कथाओं को सरल तथा सरस छन्दों मे गाया गया है । सैकड़ों नर नारी इसका नित्य नियम से पाठ करते हैं, बहुत से कथावाचक पण्डित हारमोनियम तबले पर गाकर इसकी कथा करते और बहुत से पण्डित इसी के आधार से भागवत सप्ताह बाँचते हैं । लगभग नौ सौ पृष्ठ की पुस्तक सुन्दर चिकने २८ पौंड सफेद कागज पर छपी है । सैकड़ों सादे एकरङ्गे चित्र तथा ५-६ बहुरङ्गे चित्र हैं । कपड़े की टिकाऊ बढ़िया जिल्द और उसपर रङ्गीन कवरपृष्ठ है । बाजार में ऐसी पुस्तक १०) में भी न मिलेगी । आज ही एक पुस्तक मँगाकर अपने लोक परलोक को सुधार लें । न्योछावर केवल ५।) सवा पाँच रुपये, डाकव्यय पृथक् ।

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग

हंसगुह्य-स्तोत्र (३)

(४३)

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै,
विवाद सम्वादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहम् ,
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥❀

(श्री भाग० ६ स्क० ४ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

तुमरी शक्तिनि मानि विषय जग के विज्ञानी।
मिलिकें वाद विवाद करें सब पण्डित मानी ॥
कोई कहें, अरूप रूप कछु विज्ञ बतावें।
लड़ें परस्पर, भेद जथारथ ते नहिँ पावें ॥
अस्ति नास्ति के विषय प्रभु, नहीं रूप नहिँ नाम है।
अगनित गुन अज एकरस, तिनि पदपदुम प्रनाम है ॥

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! भगवान् की स्तुति करते

❀ दक्ष प्रजापति स्तुति करते हुए कहते हैं—"प्रभो! आपकी शक्तियाँ वाद विवाद करने वालों के लिये विवाद करने की भूमि बन जाती हैं और उन विवाद करने वालों के चित्त को बारम्बार मोह में डाल देती हैं, ऐसे आप अनन्त गुणगणार्णव सर्वात्मा प्रभु को नमस्कार है।"

हुए दक्ष प्रजापति कह रहे हैं—"प्रभो! जो लोग कहते हैं, आप हैं वे भी आप को मानते हैं, जो कहते हैं आप नहीं हैं, वे भी आप को मानते हैं। निषेध भी तो अस्तित्व में ही किया जाता है। कोई पूछता है वहाँ देवदत्त है? इसका कोई उत्तर देता है—हाँ है, कोई कहता है—हाँ नहीं है। अस्तित्व तो दोनों ही देवदत्त का मानते हैं। कोई हाँ कह कर कोई निषेध करके। विवाद का विषय आप न होकर आप की शक्तियाँ हैं। आप की शक्तियों के ही सम्बन्ध में लोग परस्पर में लड़ते झगड़ते रहते हैं। भिन्न भिन्न मुनियों के भिन्न भिन्न मत आप की शक्तियों को विवाद की पृष्ठ भूमि-विवाद का विषय-बना कर ही स्थापित होते हैं। दर्शन शास्त्र के सभी आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं। कोई आपको जगत का उपादान कारण मानते हैं, कोई निमित्त कारण कोई अभिन्न निमित्तोपादान कहते हैं, कोई प्रकृति को ही कारण मानते हैं। आप की माया तथा अविद्या आदि शक्तियों को लेकर कोई विचित्र कल्पना करते हैं। इस प्रकार हे भगवन्! वे लोग आप के यथार्थ रूप को न जान कर वाद विवाद में ही पड़े रह जाते हैं, उनका चित्त वारम्बार मोह को प्राप्त हो जाता है। आप तो अनन्त गुण मय हैं, समस्त गुणों के आप ही एक मात्र आश्रय हैं, आप सर्वव्यापी हैं, आप आत्मा के भी आत्मा परमात्मा हैं। ऐसे सर्वगत सर्वात्मा आप श्री हरि के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! दो विरुद्ध धर्म वाले सांख्य और योग तथा अन्य भी शास्त्र आप एक के ही विषय में अपने अपने तर्क देते हैं। कोई कहते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का ही रूप है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, कोई कहते हैं, उसका तो कोई रूप ही नहीं वह तो नाम रूप से सर्वथा रहित है। कोई कहता है,

उसकी आकृति है, कोई कहते हैं उसकी आकृति है ही नहीं। कोई कहते हैं उसके हाथ पैर मुख नासिका आदि अंग सुन्दर हैं सरस हैं दर्शनीय हैं, कोई कहते हैं, वह चलता तो है, किन्तु उसे पैर नहीं, वह कर्म करता है, किन्तु हाथों से रहित है, वह सुनता है, किन्तु उसके कान नहीं वह देखता है किन्तु उसके आँखें नहीं। इस प्रकार आप एक को ही लेकर सब अपने अपने तर्क उपस्थित करते हैं। उन भिन्न भिन्न मतवालों की भिन्न तर्कों द्वारा भी जो एक ही उत्तम तत्व-श्रेष्ठ वस्तु-अभिमत है वही आप है। विरुद्ध धर्माश्रय रहने पर भी अन्त में आप एक ही सिद्ध होते हैं, ऐसे आप बृहत् रूप ब्रह्म स्वरूप की हम वन्दना करते हैं।

प्रभो! शास्त्र कारों ने बारम्बार आप को प्राकृत नाम रूप से रहित, अज, अव्यय, निर्गुण, निराकार और अनामी बताया है। इतना सब होने पर भी आप अपने चरणाश्रित भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त अरूप से सरूप हो जाते हैं, अनामी से नाम वाले बन जाते हैं, निराकार से साकार होकर कर्म करने लगते हैं। अज होने पर भी जन्म लेते से देखे जाते हैं। निष्क्रिय होने पर भी भक्तों के दुख दूर करने वाले कर्म करने लगते हैं। जो जो भक्त जिस जिस शरीर में श्रद्धा भक्ति से आप का अर्चन करते हैं, जो भक्त आप के जिस रूप की उपासना करते हैं आप उसी रूप से प्रकट होकर उनकी मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं। अपनी आत्म माया से प्रकृतिका आश्रय लेकर आप भाँति भाँतिकी अद्भुत अलौकिक क्रीड़ायें करने लगते हैं तभी आपके श्री कृष्ण, गोविन्द, हरि, मुरारी, नारायण, वासुदेव, दामोदर, मधुसूदन, कंसारि, नन्दनन्दन, राधिकारमण तथा अन्यान्य भी असंख्य नाम हो जाते हैं। उसी प्रकार से आप के

प्रभाव से भक्तवत्सल भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया और उनकी मनोकामना पूर्ण की। इस विषय का वर्णन तो मैं 'भागवती कथा' में कर ही चुका हूँ। इस प्रकार मैंने दक्ष प्रजापति कृत यह हंसगुह्य स्तोत्र आपसे कहा। अब जिस वृत्रासुर के भय से भयभीत हुए देवताओं ने भगवान् की स्तुति की उस प्रसङ्ग को मैं आपसे कहूँगा। सब सावधानी से श्रवण करें।

छप्पय

निराकार गुन रहित नाम अरु रूप रहित हैं।
भक्तभावना हेतु विविध विधि रूप रचत हैं॥
हे हरि! तुमरे दास रूप जो जैसो ध्यावें।
करन कामना पूर्न आपु वैसे बनि जावें॥
गहै गन्ध गुन भूमि के, वायु बनै ज्यों गन्धयुत।
निरबिकार त्यों तनु धरें, करैं मनोरथ सफल सत॥

पद

घरैं तनु भक्तनि हेतु बिहारी।
राम रूप ते रहित सकल जग गावै कृष्णमुरारी॥१॥
अन्तरयामी घट घटवासी जग माया बिस्तारी।
प्रकटैं भगैं हँसें डरि रोवें, लड़ें भिड़ें असुरारी॥२॥
सुख दासनिकूँ देंन दयानिधि, देह विविध विधि धारी।
अनिल गन्ध धरि रूप अनल ज्यों भासत परगुनकारी॥३॥
धरि अवतार करन क्रीड़ा करि तारें बहु नर नारी।
करी पुकार भगत आरत ह्वै, सपदि बिपदि प्रभु टारी॥४॥
अलख अगोचर अज अविनाशी, अच्युत अखिल अधारी।
बार बार चरननि सिर नाऊँ, लीजो सुधि बनवारी॥५॥

~~~
~~~

वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका,
ब्रह्मादयो ये वय मुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ,
विभेति यस्मादरणं ततो नः ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ६ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

विजय वृत्र की निरखि देवगन अति घबरावें ।
अनत शरन नहिँ निरखि मनहिं मन विष्णु मनावें ॥
इस्तुति सबई करें कालके काल कहाओ ।
सबके आश्रय परम मच्छ बनि मनुहिँ बचाओ ॥
कल्प आदि में अज दुखित, भये विपदि तिनकी हरी ।
वृत्र असुर दुख तें दुखी, अभय करो नर केशरी ॥

भगवान को लोग दुख में ही स्मरण करते हैं, भयहारी भग-

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं—"जिन कालदेव के लिये भयभीत होकर हम ब्रह्मादि देवगण तथा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँचों भूत तथा तीनों लोक बलिप्रदान करते हैं, पूजोपहार देते हैं वह काल भी जिनसे भयभीत बना रहता है, वे ही परमात्मा हमारे रक्षक हों।"

वान् भजन करनेवाले भक्त के भय को भगा देते हैं, किन्तु जो सदा ही भगवान् के भजन में तल्लीन रहते हैं उनको कभी विपत्ति आती ही नहीं। कदाचित् आ भी जाय, तो उसकी सार सम्हाल सर्वेश्वर श्रीहरि ही कर लेते हैं, भक्त को उसकी चिन्ता नहीं रहती। किन्तु जो किसी प्रयोजन से पूजा करते हैं, स्वार्थ से स्मरण करते हैं कामना सहित स्तुति करते हैं, तो भगवान् उनकी कामना को भी पूर्ण करते हैं, भगवान् तो कल्पद्रुम के सदृश हैं, जो जिस भावना से उनकी शरण में जाता है, उसकी वही भावना पूर्ण हो जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देवराज इन्द्र के अहङ्कार तथा अपमान से खिन्न होकर जब देवगुरु बृहस्पति अन्तर्हित हो गये, तब ब्रह्माजी की सम्मति से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को देवताओं ने गुरु बनाया। उसे असुरों का पक्षपाती देखकर इन्द्र ने उसको मार डाला। त्वष्टा मुनि ने जब सुना कि इन्द्र ने मेरे पुत्र को मार डाला, तब इन्द्र को मारने की इच्छा से उन्होंने यज्ञकुण्ड से मन्त्रों द्वारा वृत्रासुर को उत्पन्न किया। वृत्रासुर देवताओं से लड़ने गया तो उनके समस्त अस्त्र शस्त्र को ही निगल गया। अब तो देवतागण अत्यन्त ही घबराये मन ही मन अशरणशरण शरणागत दुखहर्ता श्रीविश्वम्भरण भगवान् की स्तुति करने लगे।

देवगण भगवान् से विनय करते हुए कह रहे हैं—"हे प्रभो! आज हम भयभीत हैं, आप अन्य भयों की तो बात ही क्या भव के भय को हरण करने वाले हैं। संसार में सब से बली काल है। काल से सभी डरते हैं, सभी उनकी पूजा करते हैं, सभी उन्हें बलि प्रदान करते हैं, सभी उन्हें पूजोपहार देते हैं वे

कालदेव कहीं अन्तक के नाम से, कहीं मृत्यु के नाम से, कहीं प्रधान के नाम से, कहीं प्रकृति के नाम से, कहीं अव्यक्त के नाम से, कहीं सूक्ष्मा के नाम से, कहीं श्री देवी, भूदेवी तथा दुर्गा देवी के नाम से पूजते हैं। मनुष्य ही नहीं वायु, आकाश, अग्नि, जल और पृथिवी ये पाँचों भूत, भूः, भुवः और स्वः ये तीनों लोक हम ब्रह्मादि देवता भयभीत होकर जिन की पूजा करते हैं। जिन्हें पर्व पर्व पर उपहार प्रदान करते हैं, वह काल देव भी आपके भय से थर थर काँपते रहते हैं। आप इतने महान् हैं, इतने शक्तिशाली हैं जो विश्व को भयभीत करने वाले हैं, वे आप से भय खाते हैं, आप को किसी से भय नहीं, आप सर्व समर्थ निर्भय तथा निर्द्वन्द्व हैं। हे भगवन्! आप ही हमारी रक्षा करें। इस समय हम अत्यंत ही भयभीत हैं।

प्रभो! भय होता है प्रति पक्षी से, अपने से बली से। किन्तु आप का तो कोई प्रतिपक्षी ही नहीं, आप तो स्वपक्ष परपक्ष के अहंकार से सर्वदा रहित ही हैं। आप को कोई इच्छा नहीं। इच्छा होती है आवश्यकता से आवश्यकता होती है अपूर्णता में। जो सर्वदा परिपूर्ण है उसे अन्य की आवश्यकता ही क्या है। आप तो आत्मलाभ से ही पूर्ण काम हैं। अतः आप के मन में कुछ भी प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं। आप में न्यूनाधिक भेद भाव भी संभव नहीं। भेद भाव तो उपाधि द्वारा होता है। आप में उपाधिकृत किसी भी प्रकार का भेद भाव है ही नहीं। आप सर्वत्र-सभी स्थानों पर समान रूप से व्याप्त हैं, ऊर्मियों के कारण, लहरों के कारण। आप तो सदा सर्वदा प्रशान्त हैं, राग द्वेष से शून्य हैं, द्वन्द्वों की तो वहाँ पहुँच भी नहीं और देवगण आपकी ही शक्ति से कुछ कर सकते हैं, वह भी पूर्ण रूप से नहीं; क्योंकि उनके ऊपर भी तो कोई स्वामी

बैठा हुआ है, किन्तु आप ही एक ऐसे हो जो सम्पूर्ण संसार के स्वामी हो, आप जो चाहें सो कर सकते हो, सर्व समर्थ हो। जो पुरुष आप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् की शरण में न जाकर इधर उधर सहायता के निमित्त भटकते रहते हैं। संसार सागर पार जाने के लिये अन्य उपकरण—साधन खोजते रहते हैं, वे ऐसे ही हैं मानों सुन्दर सुदृढ़ स्वयंचालित नौका को छोड़कर कुत्ते की पूँछ को पकड़कर परलीपार जाना चाहते हों। अतः विपत्ति सागर से पार जाने के लिये सबको त्यागकर एकमात्र आपकी ही हमने शरण ली है, हे सर्व समर्थ! हमें विपत्ति उदधि के पार पहुँचा दीजिये, हमारे ऊपर आये हुए संकट को हर लीजिये।

हे तारक! आपने अगणितों को तारा है। हे रक्षक! आपने अनेकों की रक्षा की है। जब प्रलय पयोनिधि चारों ओर से बढ़ रहा था, जब सातों समुद्र एक होने वाले थे, तब आपने विशाल काय मत्स्य का रूप धारण कर लिया। कहीं से सुदृढ़ नौका मँगा ली। कहीं से क्या सभी तो आप के ही भीतर विद्यमान हैं। उसपर शरण में आये हुए वैवस्वत मनुको चढ़ा लिया और उस नौका की रस्सी को अपने सुदृढ़ सींग में बाँध लिया और प्रलयकाल पर्यन्त उसे सींग में बाँध कर समुद्र में घुमाते रहे, मनुजी का मनोरंजन करते रहे, उन्हें टहलाते रहे। जिस प्रकार प्रलय पयोधि से मनुकी रक्षा की उसी प्रकार वृत्रासुर द्वारा उत्पन्न इस रणसागर से भी हमारी रक्षा कीजिये। वृत्रासुर के दुरन्त भय से हमें बचाइये। हे प्रपन्न पारिजात! जिस प्रकार-प्रपन्न हुए मनु अनायास बिना प्रयास के ही दुरन्त दुस्तर विपत्ति सागर के पार पहुँच गये

प्रकार हमारी भी चिन्ता का अन्त कर दीजिये। हमें भी निर्भय बना दीजिये।

हे देवाधिदेव! आपने मनु की ही रक्षा की हो सो बात नहीं। जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एकमात्र सृजन करने वाले हैं, जो प्रजापतियों के भी प्रजापति हैं, जो अज तथा वेदगर्भ कहलाते उन चतुर्मुख ब्रह्मा की भी आपने रक्षा की। उन्हें भयंकर भय से बचाया, उन्हें भी आपने ही निर्भयता का पाठ पढ़ाया। जिस समय प्रलयकालीन जल में उत्ताल तरंगें उठ रही थीं जल की तरंगों के प्रबल थपेड़ों से आपके नाभि का कमल हिल रहा था, प्रचण्ड पवन के वेग से हर हर घोष करती हुई लहरें निर्घोष कर रहीं थीं, उस अत्यंत भयानक जल में आपकी नाभिकमल पर बैठे ब्रह्माजी जब दशों दिशाओं को आँखें फाड़ फाड़ कर देख रहे थे, उस समय उन्हें जब अपने अतिरिक्त अन्य कोई भी दिखाई ही न दिया। नाभिकमल से गिरने के कारण ब्रह्मा जी उन अगणित ऊर्मियों के कारण घबरा गये, भयभीत हो गये, तो आपने ही उन्हें अभय प्रदान किया, आपने ही उन्हें वृहद् विपत्ति से बचाया, आपने ही उन्हें संकट सागर से पार पहूँचायो। बस प्रभो! हमें भी विपत्ति उदधि से पार पहुँचाइये, हमारे भी वृत्र रूपी सङ्कट को मिटाइये।

प्रभो! हम अज्ञानी हैं। हम आपको भुलाकर अपने को ही सब कुछ समझने लगते हैं, इसी कारण बार बार विपत्तियों को झेलते हैं, हम इस बातको भूल जाते हैं कि आपने ही हमें उत्पन्न किया है, आप हमारे जनक रक्षक, पालक तथा सर्वस्व हैं। आपने अपनी माया के द्वारा ही हमारी सृष्टि की हम जो भी कुछ सृष्टि आदि करते हैं आपकी कृपा से, अनुग्रह

से तथा आपकी आज्ञा से ही करते हैं। फिर हम अज्ञान में फँस कर आप सर्वान्तर्यामी घट घट वासी प्रभु को भूल कर अपने को ही कर्ता मान बैठते हैं। हम स्वतंत्र ईश्वर हैं। ऐसा अभिमान आते ही हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है,आप हमारे जनक हैं, सब से प्रथम हैं,सर्वेश्वर हैं सर्वव्यापक हैं इसे भुला देते हैंतभी विपत्ति पंक में फँस जाते हैं। फिर आपकी शरण में आते हैं, आप ऐसे कृपा सागर हो कि हमारे समस्त अपराधों को भूल कर आप फिर से हमें अपना लेते हैं, । फिर हमारे दुःख दुरितों को मेंट देते हैं। आज वृत्रासुर के कारण हम पुनः विपत्ति पंक में फँस गये हैं, हे हरे ! हमारी विपत्ति को हरो। हे राधिका रमण ! हमारी रक्षा करो।

प्रभो ! आज ही आप प्रमारी रक्षा करेंगे सो भी नहीं। यह कोई नयी बात नहीं है। सदा से आपने हमारी रक्षा की है और सदा इसी प्रकार रक्षा करते रहेंगे। हम पर जब जब भी विपत्ति पड़ी तब तब ही आपने विविध रूप रख कर हमारी रक्षा की। जब जब भी हमारे विपक्षी शत्रुओं ने हमें पीड़ा पहुँ–चायी तब तब ही आपने हमारी लाज बचायी। आप निर्गुण हैं, निराकार हैं, अजन्मा हैं, फिर भी हमारे दुःख हरने के हेतु निर्विकार होकर भी अपनी माया का आश्रय लेकर आपने अनेकों अवतार धारण किये। कभी देवताओं में उपेन्द्रादि अव-तार लिया। कभी ऋषियों में नरनारायण, परशुराम आदि बने कभी कच्छ मच्छ आदि जल चर बने, कभी सूकरनृसिंह हुये राम, कृष्ण, बलराम आदि अवतार लेकर हमारा उद्धार किया। आज नहीं एक बार नहीं, अनेकों बार प्रत्येक युग में अनेकों बार आपने जब हमारी रक्षा की है, तब क्या इस बार आप हमें

भूल जायँगे ? क्या हमारी रक्षा न करेंगे ? अवश्य करेंगे। प्रभो ! रक्षा करो, देव ! दया करो।

हे सर्वान्तर्यामी प्रभो ! आप सब की आत्मा हैं। चराचर विश्व में निरन्तर गमन कर रहे हैं व्याप्त हो रहे हैं। आपसे बढ़ कर कोई देवता नहीं। आप परमदेव हैं, देवाधिदेव हैं महादेव हैं। इस विश्व की रचना विद्वान लोग प्रकृति पुरुष के संयोग से बताते हैं। वे प्रकृति पुरुष भी आप ही हैं। आप से भिन्न कोई प्रकृति पुरुष नाम की वस्तु नहीं। विश्व के एकमात्र कारण तो आप ही हैं। आप सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने से विश्वम्भर कहाते हैं यद्यपि आप विश्व से सदा सर्वदा पृथक हैं निर्लेप हैं, फिर भी विश्व आप ही का रूप है इसलिये तो आप विश्वरूप नाम से व्यवहृत किये जाते हैं। आप सब के अधिष्ठान हैं आपका अधिष्ठान कोई नहीं। आप सर्वगत सर्वपालक परमेश्वर हैं शरणागतवत्सल हैं इसीलिये हम आपकी शरण में आये हैं, हम शरणागतों को आश्रय प्रदान कीजिये, हे रणरक्षक ! हमारी रक्षा कीजिये।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! जब देवताओं ने भगवान् की आर्त होकर इस प्रकार विनती की तो उनके देखते ही देखते पश्चिम दिशा में शंख चक्र गदा पद्मधारी भगवान् विष्णु प्रकट हुए। उनको देखकर अब जिस प्रकार देवता गण भगवान् की स्तुति की मैं आगे वर्णन करता हूँ।

छप्पय

हरि हम सबके जनक भूलि निज करता मानें।
प्रेरक प्रभु तें प्रीति करें नहिँ महिमा जानें॥
लै जुग जुग अवतार हमारी रक्षा कीन्हीं।
तातें सब तजि आय शरन हरि तुमरी लीन्हीं॥
शरनागत पालक प्रभो! पद-पदुमनि महँ परिहैं।
जिनि अब तक रक्षा करी, सो आगे हू करिहैं॥

पद

असुर दुख देइ दयालो सब कूँ।
देखें द्वार जाइ सबई के, अभय करो नहिँ हमकू॥१॥
आपु काल के काल जगत्पति, हारि चुके निज बलकूँ।
अब सागर में डूबन चाहत, निरखें चहुँ दिशि जलकूँ॥२॥
प्रलय पयोधि निरखि मनु डरपे, धरि हरि सफरी तनकूँ।
पार करे अजहू अपनाये, दीयो सुख भगतनिकूँ॥३॥
देव, असुर, नर, किन्नर, गुह्यक, समुझें नहीं मरमकूँ।
जुग जुग महँ प्रभु रक्षा कीन्हीं, थापत सतत धरमकूँ॥४॥
खल बल पाइ बली बनि सुर, रिपु मारत देवनि दलकूँ।
काटो क्लेश वृत्र बध करिकें, बन्दें चरन कमलकूँ॥५॥

देवगणकृत भगवत् स्तुति

देवा ऊचुः

वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका,
ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै वलिमन्तकोऽसौ,
बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥१॥

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं,
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि वालिशः,
श्वलांगुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२॥

यस्योरुशृंगे जगतीं स्वनावं,
मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ।
स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद् दुरन्तात्,
त्राताऽऽश्रितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥३॥

पुरा स्वयंभूरपि संयमाम्भसी,
उदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ।
एकोऽरविन्दात् पतितस्ततार,
तस्माद् भयाद् येन स नोऽस्तु पारः ॥४॥

य एक ईशो निजमायया नः,
सस‍र्ज येनानुसृजाम विश्वम् ।
वयं न यस्यापि पुरः समीहतः,
पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ॥५॥
यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्,
देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ।
कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया,
कृत्वाऽऽत्मसात्पाति युगे युगे च ॥६॥
तमेव देवं वयमात्मदैवतं,
परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं,
स्वानां स नो धास्यति शं महात्मना ॥७॥

देवताओं द्वारा दयानिधि की स्तुति (१)

(४५)

नमस्ते यज्ञ वीर्याय वयसे उत ते नमः।
नमस्ते ह्यस्त चक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ९ अ० ३१ श्लो०

छप्पय—

सुरनि विनय सुनि प्रकट भये भयहर सुखहारी।
शंख चक्र उर माल गदा धारी बनवारी॥
देव दंडवत परे कहैं-हरि सुखकर दुखहर।
परम तत्व परमातम पुरुष पर पालक प्रभुवर॥
सिरजहिं पालहिं हरहिं हरि, विश्वम्भर वर विमल विभु।
निरगुन निरवधि निरञ्जन, अगनित गुन गन युक्त प्रभु॥

भगवान् तो शरणागत वत्सल हैं, आर्तों की आर्त पुकार

---

*भगवान की स्तुति करते हुए देवता कह रहे हैं—"हे यज्ञवीर्य ! आप को नमस्कार है। हे सब की अवस्था निर्धारित करने वाले काल प्रभो ! आप को नमस्कार है। हे हाथ में चक्र धारण करने वाले चक्रधारी भगवन्! आप को नमस्कार है। हे हरे ! आप के बहुत ही सुमधुर नाम हैं ऐसे बहुनाम धारी आप को बारम्बार प्रणाम है।"

को सुनने वाले हैं, जो उन्हें सच्चे हृदय से आर्त होकर पुकारता है, अपने अहंकार को सर्वोतमभाव से मेंटकर उन्हीं के चरणों की शरण ले लेता है, तो भक्त वत्सल भगवान् उसकी पुकार को अवश्य सुनते हैं और तुरन्त आकर उसके दुखको दूर करते हैं। गज, गृद्ध, द्रौपदी तथा ऐसे असंख्य भक्तों के उदाहरण उपस्थित हैं, कि जिनके पुकारते ही प्रभु प्रकट हो गये और उनके दुख को दूर कर दिया। देवताओं पर जब जब विपत्ति पड़ी,तब तब ही भगवान् उनके पहले के अपराधों को भूलकर उनके सम्मुख प्रकट हो गये। समर्थ होकर भी जो दीनोंके अपराधोंको स्मरण रखे तो उनका उद्धार कैसे हो सकता है ? अतः शरणागतवत्सल भगवान् पिछले अपराधों को विसार देते हैं और आगे को सुधार देते हैं। ऐसे दयालु कृपालु देव को त्यागकर अन्य किसकी शरण ली जाय ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब वृत्रासुर के भय से भयभीत हुए देव गण आर्त स्वर से भगवान् की विनय करने लगे, तो उसी समय उन्होंने पश्चिम दिशा में देखा भक्त भयहारी भगवान् पृथिवी का बिना स्पर्श किये गरुड़ पर बैठे आकाश में अधरास्थित हैं। उनके सुंदर सुघर चारों बाहुओं में शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभायमान हैं। वक्षःस्थल में कौस्तुभमणि दम दम करके दमक रही है। किरीट कुंडल धारण किये तथा समस्त भगवल्लक्षणों से युक्त प्रभु आपके सुनंद नन्दादि सोलह पार्षदों सहित मन्द मन्द मुसकरा रहे हैं। भगवान् के दर्शन करके देवताओं के आनन्द की सीमा नहीं रही, वे अत्यंत आह्लाद के साथ प्रेम में विह्वल होकर दंड के समान धूलि में लोट गये। बड़ी देर तक साष्टाङ्ग दण्डवत् करते रहे, फिर कुछ शरीर की सुधि आने

पर शनैः शनैः उठकर गद्‌गद वाणी से इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवगण कहने लगे—"प्रभो! आप यज्ञ स्वरूप हैं। स्वरूप तो आप का अद्‌भुन अलौकिक अनिर्वचनीय तथा अनुपम है। यज्ञ आप का बल वीर्य तथा फल दाता है। ऐसे यज्ञ वीर्य आप को नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत का कलपन करते हैं संहार अतः काल भी आप का रूप है। हे काल स्वरूप केशव! आप के चरण कमलों में प्रणाम है। आप ने अपने श्री हस्त में सदा चक्र धारण किये रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण संसार चक्र आप के अधीन है। अथवा कालचक्र आप के करतल है, अथवा आप अपने आश्रितों को अभय प्रदान कर रहें हैं कि तुम यज्ञ यागादि शुभ कर्मों के विनाशक असुरों से भय-भीत मत होओ देखो असुरों के विनाशक हेतु मेरे हाथ में चक्र है। अथवा चक्र द्वारा सब को उपदेश दे रहें हैं, कि इस संसार में सभी अस्थायी क्षणभंगुर और परिवर्तन शील हैं जैसे यह घूमता है वैसे ही सम्पूर्ण संसार के भोग पदार्थ भी घूमते रहते हैं। आप अपने चक्र के चका चौंध से अभिमानियों के अभिमान को चकना चूर कर देते हो, असुरों के अहंकार को मेट देते हो, प्रभो! इस समय वृत्रासुर को अपने बल का अभिमान है। वह अपने समान किसी को कुछ समझता ही नहीं, अतः प्रभो! चक्र द्वारा उसके दर्प को दलन कर दो, आप के चरणारविन्दों में वारम्बार नमस्कार है।

स्वामिन्! किन नामों से हम आप को सम्बोधित करें। आप के तो सहस्र नाम हैं। सहस्र शब्द केवल उपलक्षण मात्र है, आप के तो अनन्त नाम हैं, जिसको जो प्रिय हो वही ले। आपके

सभी नामों में समान रूप से अनन्त शक्ति भरी है। अतः हे सुपुरुहूति ! आप के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो ! आप सात्विक राजस और तामस तीनों गुणों के नियामक हैं अथवा उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय इनके कर्ता हैं अथवा त्रैगुण्य विषय जो ऋक्, यजु, और साम ये तीन वेद् हैं उनके भी नियमन कर्ता हैं, अथवा ब्रह्मा, विष्णु महेश इनकी भी गति विधि के संचालक हैं। अथवा देव, मनुष्य और तिर्यक् इन तीनों गतियों के दाता हैं, अथवा स्वर्ग अपवर्ग और नरक इन तीनों प्रकार की गतियों के नियामक हैं। आप स्वयं तो तीनों से परे हैं। आपका परम धामतो इन तीनो से विलक्षण है, वह तो निर्गुण पद है। इस पद को कार्य रूप जगत का कोई भी अर्वा-चीन जीव नहीं जान सकता उसे तो आपके कृपा पात्र प्राप्त कर सकते हैं। अतः हे प्रभो ! आप को बारम्बार प्रणाम है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! अब तक तो देवता गण पद्य में श्लोक बद्ध स्तुति करते रहे, किन्तु जब भावोद्रेक अधिक बढ़ा और संयत परमित पद्यों में अपने भावों को पूर्ण व्यक्त न कर सके, तो वे गद्य में ही स्तुति करने लगे। पीछे वे भगवान् को बहुत नाम वाले कह चुके हैं, अतः वे भगवान् के कुछ नामों का सरल भाषा में सम्बोधन कर के कहने लगे—"प्रभो ! आप का वाचक प्रणव बताया गया है, आप ओंकार स्वरूप हैं। आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं, आप में ही समस्त धर्म विद्यमान है। निखिल यश के एकमात्र आधार आप ही हैं। परिपूर्ण शोभा श्री आप के ही आश्रय से टिकी है, ज्ञान की पराकाष्ठा आप में ही है। सम्पूर्ण स्वरूप से वैराग्य के आलय आप ही हैं। इसीलिये आप भगवान् शब्द से व्यवहृत होते हैं। जीवों की उत्पत्ति विनाश

गति अगति आदि आप भली भाँति जानते हैं। हे भगवन्! आप का नाम नारायण भी है नार जल में आप का अयन है क्षीर सागर में आप का शयन करने से नारायण कहाते हैं। नार शब्द का अर्थ जीव समूह भी है, उन जीवों के अयन प्राप्य प्रापक आधार एकमात्र आप ही हैं इससे भी आप का नाम नारायण है। हे नारायण! आप सर्वत्र बसते हैं, अथवा सब जीवों के निवास आधार आप हैं, इससे वासुदेव कहलाते हैं। हे वासुदेव! इस सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं। आप सर्व प्रथम हैं इसी लिये आप का समस्त शास्त्र आदि पुरुष कहते हैं। हे आदि पुरुष! आप प्रकृति और पुरुष दोनों से परे हैं, इन तीनों लोकों का आप पालन पोषण भी करते हैं और अपनी शक्ति से इन्हें धारण करते हैं इसी से परम पुरुष बोले जाते हैं। हे परम पुरुष! आप का अनुभाव-प्रभाव महान् है, इसीलिये कोई उसकी कल्पना नहीं कर सकता। आप अमित तथा अचिन्त्य प्रभाव वाले हैं। हे महानुभाव! आप से ही समस्त मंगलों का प्रभाव हुआ है। आप मंगलों के आलय मंगल स्वरूप ही हैं। हे परम मंगलमय! आप कल्याणकर हैं आप मंगलायतन हैं! हे परम कल्याण स्वरूप! आप कल्याण के निधान हैं। करुणा के सागर हैं परम करुणामय हैं। परम कारुणिक प्रभो! आप अपना स्वार्थ नहीं,जो स्वार्थ निरपेक्ष पर दुख सहिष्णु होते हैं वे ही कारुणिक हैं आप जीवों पर करुणा करके ही नानावतार धारण करते हो। जगत् के और भी अनेकों आधार हैं, प्रकृति, विकृति, ब्रह्माजी इन सब जगत का आधार बताते हैं, किन्तु यथार्थ में एकमात्र आधार तो आप ही हैं। हे जगदाधार! न तो कोई आप से बढ़कर ही है न आप के समान है आप ही एक मात्र इस लोक के स्वामी हैं। हे लोकैकनाथ! आप ब्रह्मादि देवों के भी ईश्वर हैं। आप लक्ष्मी पति हैं श्री पति हैं, कमलाकान्त हैं। हे लक्ष्मी पते! हे प्रभो!

जो परमहंस परिव्राजक हैं ज्ञानी तथा सन्यास धर्मनिष्ठ परम त्यागी विरागी महानुभाव हैं, जो ज्ञान कर्म योग में निष्ठा रखने वाले हैं वे परमोत्कृष्ट आत्म समाधि द्वारा अथवा परमात्म विषयक दृढ़ ध्यान द्वारा आप का निरन्तर अनुशीलन करते रहते हैं। उस अनुशीलन से पारमहंस्य धर्म प्रकाशित होता है। पारमहंस्य धर्म का जहाँ प्रकाश हुआ वहीं तहाँ हृदय में जो अज्ञान रूप कपाट लगे हैं वे खुल जाते हैं अपावृत हो जाते हैं। उस समय आत्म लोक में निरावरण रूप से जो निजानन्द स्वरूप अनुभव किये जाते हैं, वे ही आप हैं। अर्थात् परम त्यागी विरागी ध्यान योग समाधि द्वारा अज्ञानान्धाकारको मेंटकर विशुद्ध हृदय में आप का ही अनुभव करते हैं, ऐसे ध्यानैकगम्य आप आनन्द स्वरूप सच्चिदानंद प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे भगवन्! आपका यह जगत् व्यापाररूप लीलायोग हमें तो बड़ाही दुर्बोध दुर्विज्ञेय जान पड़ता है। आप संकल्प मात्रसे ही इतने बड़े जगत् को बनालेते हैं, उसका पालन भी करते हो और अन्तमें संहार भी करलेते हो। लोकमें देखा गया है, कि जो कर्ता होता है, बनानेवाला होता है उसे बनानेको बहुत से उपकरण अपेक्षित होते हैं, अन्य लोगोंकी सहायता की अपेक्षा होती है। जैसे कुम्भकार ही है, वह जब घड़ा बनाता है, तो उसे मिट्टी चाहिये, जिसपर घट आदि बनावे वह चाक चाहिये, उसमें डन्डा चाहिये, सूत, पानी तथा सहायक चाहिये, जहाँ बैठकर बनावे भूमिका आधार चाहिये शरीर निरोग चाहिये, वस्तुयें लाने उठाने, धरनेको सहायक स्त्री, बालक, सेवक आदि चाहियें तब वह वर्तनोंको बनाता है। किन्तु आप को न किसी उपकरण की आवश्यकता

होती है न सहायककी और न अधारकी ही। आप स्वयं निर्गुण निराकार निर्विकार बने रहने पर भी इस गुणमयी सृष्टिको करते हैं। कुछ भी आधार न रहने पर निराधार रचना कर लेते हैं। अशरीरी रहने पर भी अनन्त शरीरोंको बनालेते हैं, हमारी सहायता की आपको कुछभी अपेक्षा नहीं। आप को जब तक इच्छा होती है अपनी बनायी सृष्टि का पालन करते हैं, जब इच्छा होती है, संहार कर देते हैं। यह आप की कैसी लीला है, कैसा विहार है, कैसा विनोद है। हमें आपके इस निराधार विलक्षण व्यापारको देखकर बारम्बार शंका हो उठती है। हम सोचते हैं आपसब इतने प्रपंच का विस्तार कैसे करते हैं, क्यों करते हैं, किस लिये करते हैं, इस विषयमें हम कुछ निर्णय ही नहीं कर सकते। आपकी लीला अपरम्पार है, हमलोग केवल तर्कना ही कर सकते हैं, आप अनादि अनन्त दुर्विज्ञेय तत्वके सम्बन्धमें अपना निर्णय दे ही क्या सकते हैं।

सूतजी कहते—मुनियो ! इस प्रकार ;देवतागण भगवान् की स्तुति करते हुए भी अपनी शंकाओंको रखते हैं और स्वयंही उनका दार्शिनिक विवेचन भी करते हैं। उस प्रसंगको मैं आगे कहूँगा। आप इस प्रसंग को परम एकाग्रता के साथ, अत्यन्त ही ध्यान पूर्वक श्रवण करें, क्योंकि तनिक भी चित्त इधर उधर गया, तो प्रसंग हाथसे जाता रहेगा।

छप्पय

परम कौतुकी कृष्ण कलित क्रीड़ा कर बावें।
तुमरी माया पार सकल सुरगन नहिं पावें॥
कविगन करें कुतर्क हेतु दै दै थकि जावें।
जो तरकनि तैं परें तरक तिनकूँ कस पावें॥

आपु सकल संसारमें, सब सारनिके सार हो।
सर्वेश्वर सरवज्ञ सुख, सागर सरबाधार हो॥

पद

प्रभुजी ! नाम अनन्त तिहारे।
वासुदेव बलदेव विहारी, वनप्रिय वंशीवारे ॥१॥ प्रभु०
नारायण नरसखा नरोत्तम, नाम रूप तें न्यारे।
परम पुरुष परतत्व परावर, परमेश्वर प्रभु प्यारे ॥२॥ प्रभु०
परमहंस परिव्राजक पर प्रिय, पुनि पुनि पतित उधारे।
क्रीड़ा कलित कौतुकी करि करि, करे कुतरकी कारे ॥३॥ प्रभु०
सारभूत सरबेश सकल शुभ,शरनागत स्वीकारे।
तजि सब आश पुन्यप्रद पकरे, प्रभुपद पदुम तिहारे ॥४॥ प्रभु०

देवताओं द्वारा दयानिधि की स्तुति (२)

(४६)

हंसाय दह्वनिलयाय निरीक्षकाय
कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता—
वन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ९ अ० ४५ श्लो०)

छप्पय

हो स्वतन्त्र परतन्त्र होहि निरनय नहिँ स्वामी।
उभय पक्ष ई सत्य आपु सब समरथ नामी॥
विज्ञ सच्चिदानन्द ब्रह्म जग जीव बतावें।
जैसो जी को भाव ताहि तस नाथ लखावें॥
अधिष्ठान अवशेष अज, प्रियतम प्रेम प्रकाश हैं।
परिचरिया पद पदुम कस, तजै तुम्हारे दास हैं॥
उन सर्वज्ञ सर्व व्यापक सर्व समर्थ सर्वेश्वर सर्वाधार

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए देवता गण कह रहे हैं—उन हंस स्वरूप भगवान् को नमस्कार है। हृदयाकाश विहारी को सर्व साक्षी श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु को नमस्कार है। विमल कीर्ति वाले श्री हरि को अनादि तथा सत्संग्रही सज्जन पुरुषों द्वारा सेवित एवं संसार पथ को शरण में आने पर शरणागतों को अन्त में उत्तम गति देने वाले उन श्री हरि को बारम्बार नमस्कार है।

सर्व साक्षी सच्चिदानन्दघन कूटस्थ भगवान् के सम्बन्ध में जो भी कहा जाय वही सत्य है अथवा जो भी कुछ कहा जाय सोचा जाय सब मिथ्या है। उनके सम्बन्ध में ऐसा ही है यह बात नहीं कही जा सकती!

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देवता गण भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"प्रभो! संसार में दो ही प्रकार के प्राणी देखे जाते हैं। एक तो ऐसे जो कर्मों मे अधीन होकर नाना कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।दूसरे ऐसे जो स्वयं कर्म बन्धनों ने में नहीं फँसते वे दीपक की भाँति केवल साक्षी मात्र बने रहते हैं। जैसे देवदत्त यज्ञ दत्त विष्णु मित्र तथा और भी अनेक नामों वाले पुरुष हैं। वे जन्म लेकर एक अपना घर बनाकर उस घर में रहकर अपने पूर्व जन्म के कृत दुःख सुखों का भोग भोगते हैं। आप भी उसी प्रकार अपने ब्रह्म स्वरूप से जीव रूप रख कर गुण प्रवाह में पतित होकर नानाकर्मों को करते है अथवा अपनी जो चैतन्य शक्ति है उससे च्युत न होकर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में ही अवस्थित रहकर आत्माराम तथा उपशमशील बने हुए संसारी कार्यों से उदासीन रहते हो। इन दोनों में से कौन सत्य है कौन असत्य है। इसका निर्णय हम लोग अभी नहीं कर सके। इनमें से कौन यथार्थ है यह बात हमारी बुद्धि में बैठती नहीं।

फिर हम सोचते। आप तो भिन्न गुणाश्रय हैं। जैसे गीले बाँसों में जल भी रहता है अग्नि भी रहती है। जल और अग्नि भी रहती है। जल और अग्नि परस्पर में विपरीत गुण हैं। एक साथ दोनों रह नहीं सकते। किन्तु गीले बाँसों में भी रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो ही जाती है। यदि आप में भी ये दोनों ही बातें रहें तो क्या हानि है आपके लिये तो कोई विरोध की बात ही

नहीं। यदि आप पुण्य पाप से उत्पन्न कर्मों के अधीन साधारण जीव होते तब तो विरोध हो भी सकता था। विरोध के लिये अवसर भी था। किन्तु आप तो जीव नहीं शीव हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान् हैं आप में अनन्त अगणित गुणगण विद्यमान हैं आपके महात्म्य के सम्बन्ध में कोई ऐसा ही है इतना ही है" नहीं कह सकता। वह तो सदा सर्वदा दुर्बोध है। दुर्विज्ञेय है। आपकी सामर्थ्य की भी कोई सीमा नहीं इयत्ता नहीं और कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् सर्वसमर्थ हैं। आपके स्वरूप के सम्बन्ध में लोग नाना तर्क वितर्क किया करते हैं। आपकी स्वरूप सिद्धि के निमित्त आधुनिक शास्त्रों के रचयिता बड़ी बड़ी बातें बनाते हैं पहिले वे आपके स्वरूप के सम्बन्ध में विकल्प करते हैं संशय करते हैं संशय के अनन्तर फिर वितर्क उठते हैं कि ऐसा हो सकता है या नहीं ऐसा है वैसा है। वितर्क के अनन्तर विचार करते हैं इस तर्क वितर्क युक्ति युक्त कौन सा है इसी का नाम विचार है फिर अन्यतर पक्ष साधक जो प्रमाण हैं। प्रमाण नहीं प्रमाण की भाँति आभासित होने वाले प्रमाणाभास आदि दे देकर जो कुतर्क करते हैं, कुतर्कों द्वारा जिनका अन्तः करण दूषित हो गया है, वे और बातों को सुनते ही नहीं। सभी को इन्हीं कुतर्कों की कसौटी पर कसना चाहते हैं। वे आपके स्वरूप के निर्णय के अवसर पर इन्हीं बातों पर बल देते हैं। इन्हीं का दुराग्रह करते हैं। किन्तु आपके स्वरुप के सम्बन्ध में तो इन कुतर्कों के लिये कोई स्थान ही नहीं। यहाँ तो इनके लिये रंचक मात्र अवकाश ही नहीं क्योंकि आप का जो यथार्थ स्वरूप है वह तो सम्पूर्ण माया मय प्रपञ्च से रहित है। ये तर्क तो माया के सम्बन्ध से किये जाते हैं। आप तो निष्प्रपंच हैं केवल हैं। हाँ, यदि आप अपनी माया का आश्रय ले लें, अपने अद्वितीय स्वरुप में अपनी माया को छिपा

लें, तो आत्म माया के आश्रय से तो कर्तृत्व भोक्तृत्व सभी आप में संभव हो सकता है योग माया संवृत होने पर तो आप सबके सम्मुख प्रकाशित होते नहीं माया के आश्रय से सभी व्यापार कराते हैं। वास्तव में देखा जाय तो न तो आप में कर्तृत्व है न भोक्तृत्व है न उदासीनता ही है। आप में दोनों ही स्वरुपों का अभाव है। आप को जो जिस भावना से देखते हैं उन्हें वैसे ही प्रतीत होते हैं। विवेकी पुरुषों को आपके माया से रहित प्रपञ्च से परे विशुद्ध सच्चिदानन्द स्वरुप का अनुभव होता है और जो विवेकी नहीं केवल कुतर्क करना ही जानते हैं, वे अन्य साधारण जीवोंके समान ही आपको कर्ता भोक्ता मानते हैं। जैसे कहीं अन्धकार में टेढ़ी मेढ़ी रस्सी पड़ी है तो अविवेकी पुरुष तो उसे सर्प समझेंगे। नाना युक्ति देकर उसे सर्प सिद्धि करेंगे, किन्तु विवेकी पुरुष उसे सर्व काल में रस्सी ही मानेंगे। जो रस्सी में सर्प को सिद्ध करते हैं। वे अपनी बुद्धि से उचित ही कर रहे हैं। वे भ्रम को अधीन कर ऐसी बात कहते हैं। ज्ञानी उसका रहस्य समझता है अतः वह चुप रहता। वाद विवाद से उपरत हो जाता है। जैसे रस्सी विरोध नहीं करती कि मैं सर्प नहीं हूँ उदासीन भाव से पड़ी रहती है अविवेकी के लिये वह सर्वथा सर्प ही है। विवेकी के लिये रस्सी ही है। उसी प्रकार आप भी ज्ञानी अज्ञानी पुरुषों की बुद्धि का अनुसरण करते हैं।

हे भगवन्! शुद्ध अन्तः करण से विवेक पूर्वक विचार किया जाय तो इस असार संसार में एकमात्र आप ही सार दिखाई देते हैं। आप की इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। कोई पंचभूतों को जगत का कारण मानते हैं। कोई महत्तत्त्व, प्रकृतितत्व को किन्तु आप इन सभी कारणों के कारण हैं। आप का कोई कारण नहीं है आप ही सबके कारण हैं। जो भी कुछ

दिखायी देता है सब आप का ही रूप है' सर्वं खलु इदं ब्रह्म शब्द से आप ही परिलक्षित होते हैं। क्यों कि आप अन्तर्यामी हैं घट घट वासी हैं श्रुतियों में जो अनात्म्य वस्तुओं क लिये नेति नेति शब्द आता है। वह आपके समीप पहुंच कर समाप्त हो जाता है। नेति नेति कहते कहते केवल मात्र आप ही अवशेप रह जाते हैं'। अन्य समस्त अनात्म्य पदार्थों' का बाद होकर अधिष्ठान रूप से आप ही अवशिष्ट रह जाते हैं'।

प्रभो! संसार में दो ही प्रकार के सुख हैं' दृष्ट सुख और श्रुत सुख। सुन्दर रूपोपभोग सुख मधुर कर्ण प्रिय शब्द सुख, हृद्य मधुर प्रिय रसा स्वादन सुख, मनोज्ञ प्राण प्रिय सुगन्ध सुख और सुखद मनोज्ञ कोमल, प्रिय, मृदुल स्पर्श सुख इन सुखों की प्राप्ति के लिए प्राणी व्यग्र रहता है एक बार मिल जाते हैं तो उन्हें पुनः पुनः पाने का प्रयत्न करता है। बार बार भोगने की इच्छा रखता है। जो देखे नहीं हैं केवल सुने ही हैं' जैसे स्वर्ग में नन्दन कानन के भ्रमण का सुख, दिव्य तन वाली कोमलाङ्गी अप्सराओं के साथ वासका सुख अमृत पान का सुख, विमानों में परिभ्रमण का सुख। शास्त्रों द्वारा इनकी प्रसंसा सुनकर प्राणी इन्हें पाने के लिये पुण्य प्रद कार्य करता है। मन में उनकी लालसा रखता है। इन सुखों को जीवन का सार सर्वस्व समझता है। किन्तु हे मधुसूदन! हे सर्व सुखों के सारातिसार! किसी प्रसंग से, किसी संत महात्मा अथवा भगवत भक्त की कृपा से किसी प्रकार आपके महिमामृतरस समुद्र में से एक विन्दु रस भी कभी किसी को चखने के लिये मिल गया तो उस एक विन्दु रस से ही उसे जितने अब तक के दृष्ट श्रुत रस हैं' सभी फीके फीके से प्रतीत होने लगते हैं। उस चखने ही रस के कारण उसके अन्तः करण सुख की एक निर्म-

रिणी प्रकट हो जाती है। उससे निरन्तर सुख का प्रवाह बहता रहता है। उसमें वह प्राणी किलोलें करता रहता है आनन्द में निमग्न रहता संसारी भोग उसे तुच्छ घृणित प्रतीत होते हैं विषय जन्य जो लेश मात्र-सुखाभास हैं वे उसे स्मरण ही नहीं आते, उनकी सदा के लिये विस्मृति हो जाती है। उनका चित्त सर्व भूत सुहृद् सर्वात्मा आप में ही निरन्तर समाहित बना रहता है।

प्रभो! वास्तव में तो आपके चरण कमल मकरन्द के लोलुप भ्रमर भक्त ही स्वार्थ कुशल हैं। जो सन्सारी अर्थ अर्जन प्रवीण हैं। वास्तव में वे कुशल नहीं हैं। इतना श्रम करके भी अनित्य क्षण भंगुर अन्त में दुःख देने वाले विषयों में रत हैं वे तो अपने स्वार्थ का विघात करते हैं। आप की महिमा ही अत्यन्त स्वादिष्ट अन्तः करण को परम सुख देने वाला रस है। वह रस भी परिमित नहीं। उस रस का तो अनन्त अपरिमित निस्सीम समुद्र है अगाध अपार सागर है। उसमें जिसने अवगाहन कर लिया, जिसने उसमें एकबार भी गोता लगा लिया वह कृतार्थ हो गया उसने मानव जीवन का यथार्थ फल प्राप्त कर लिया।

अवगाहन या पान की बात जाने दीजिये उस अपार महिमा रस सागर में से एक विन्दु मात्र ही जिसके मुख में चला गया उसके हृदय में सुख की एक निर्झरिणी फूट निकलती है। उस निर्झरिणी का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। उस सुख प्रवाह के अनवरत बहते रहने के कारण उनका चित्त पूर्णरीत्या आप में समाहित हो जाता है। ऐसे जो आपके ऐकान्तिक अनन्य भक्त हैं वे ही वास्तव में स्वार्थ कुशल हैं। वे ही आत्मप्रिय सुहृद् हैं। जिन्हें एक बार भी आप के चरण कमलों की सेवा

अधिकार हम अपना समझते हैं। यदि आप उचित समझें तो इसे दण्ड दें।

स्वामिन्! हमारा कोई अन्य आश्रय नहीं। हमारे तो एक मात्र आराध्य देव सगे सम्बन्धी आपही हैं। आप ही हमारे पिता हैं। हमारे पिता कश्यपके भी पिता हैं। उनके पिता ब्रह्माजी के भी पिता हैं। अतः पिता, पिता मह प्रपिता मह सभी हमारे आपही हैं। आपकी भी हमारे ऊपर सदा पुत्रों की भाँति अनुग्रह रहती है। तभी तो जहाँ भी हम आपका स्मरण करते हैं वहीं आप हम पर अनुग्रह करते हैं जहाँ भी हम हृदय से स्तुति करते हैं, वहीं आप सगुण स्वरूप से प्रकट होकर दर्शन देते हैं। अब भी आप ने सगुण रूप से प्रकट होकर हम अकिंचनोंको अपनाया है अपने परम दुर्लभ दर्शनों से कृतार्थ किया है। हम आपके अपने हैं आपकी संतान हैं। हम सदा से नित्य निरन्तर आप के सम्मुख नत मस्तक हैं, आपके परम पावन पाद पद्मों के ध्यान से हमारा अन्तः करण निर्मल हो गया है। आपके प्रेम सूत्र ने हमारे हृदय को आबद्ध कर लिया है। हे कृपा के सागर! अब कृपा कीजिये। हे दयालो देव! अब दयाको दर्शाइये। हे अच्युत! अपने अधम अनुचरों को अपनाइये चारु चितवन से जो दया से परिपूर्ण है प्रेम से परिप्लावित है विशद है सुखद सुन्दर है शीतल है मंद मुसकान से युक्त है उसके द्वारा हमें अभय प्रदान कीजिये। हमारा अन्तः करण इस तेजस्वी असुर के प्रबल पराक्रमों के कारण संतप्त हो रहा है। ताप युक्त बना हुआ है। उस ताप को अपने मुखार विन्द से विसृत वाणी रूप सुवास से अपने पूर्ण चन्द्र सदृश अनुपम आनन की सुधा कला से शीतल बनाइये शान्त कीजिये।

हे अच्युत ! यदि कोई बात आपको अविदित हो तो उसे विदित करावें । सूर्य का क्या दीपक दिखावें। कहीं खद्योत के प्रकाश से क्या जगत का तम विनाश हो सकता है ? कहीं विस्फुलिंग अग्नि को प्रकाशित करने में समर्थ हो सकते हैं ? अग्नि तो स्वयं ही प्रकाश स्वरूप है इसी प्रकार आप सर्वज्ञ को हम क्या अर्थ विशेष का ज्ञान करावें ? बाहर भीतर कोई ऐसी बात नहीं जिसे आप जानते न हों। आप अपनी दिव्य योग माया के साथ क्रीड़ा करनेवाले हैं। वह वैष्णवी माया इस जगत् को बनाती है। बिगाड़ता है और पालन पोषण करती है। आप समस्त जीवों के अन्तः करण में अन्तर्यामी तथा ब्रह्म रूप से तथा प्रधान या प्रकृति रूप से आप स्थित रहते हैं। कहीं भी कोई भी अणुमात्र भी ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ आप न हों। निखिल जीव समुदाय के उपादान तथा प्रकाशक रूप से देश काल, देह और अवस्था के विशेष के अनुसार उनका अनुभव करने वाले हैं। संसार में जितनी भी प्रतीति होती है उन सबके आप साक्षी हैं। हम सब जो भी कुछ कहते हैं सुनते हैं अनुभव करते हैं वह सब आपकी प्रेरणा से करते हैं आकाश ही आपका शरीर है। अर्थात् आप आकाश की भाँति सर्व व्यापक हैं कोई भी ऐसा विचार नहीं जो जो आकाश से अविदित हो सदा होने के कारण आप भी सब कुछ जानते हैं।

प्रभो ! आपके ऐश्वर्य की कोई थाह नहीं सीमा नहीं। आप का ऐश्वर्य अचिन्त्य है अवाङ्मनसगोचर है। आप गुरुओं के भी गुरु हैं जगत गुरु हैं परमगुरु हैं परमेष्ठी गुरु हैं। स्वामिन् ! आप हमारे मनोगत भाव को जानते ही हैं। हम आपके निष्काम भक्त नहीं हैं सकामी हैं आर्त हैं। हम जिस दुख से दुखी होकर जिस कामना के वशीभूत होकर आपकी शरण में आये हैं

कामना को आप पूरा कर दें। हम आपके द्वार से *निराश न* लौटने पावें। हम विविध कामना रूपी धाम के कारण तथा इतने बड़े संसार में पैदल ही चलने के कारण श्रान्त तथा क्लमित होकर आपके चरण कमलों की सुशीतल छाया में आये हैं उन्हीं अरुण वरण के सुखद सरस शीतल पाद पद्मों का आश्रय लिया है। *यहाँ से हम निराश नहीं लौट सकते। हे अशरण शरण!* हम शरणागतों के मनोरथ को आपपूर्ण करें।

हे देव! आप सबको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सब को आश्रय देते हैं इसी से कृष्ण कहलाते हैं। आप सब के स्वामी भी होने से ईश कहलाते हैं हे कृष्ण! हे ईश! यह *वृत्रासुर तो बड़ा ही बलवान् है। यह तो तीनों लोकों को अपने* मुख में रखकर निगल जायगा। इसने हमारे सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों के साथ ही सम्पूर्ण तेजको ग्रस लिया है इसको अविलम्ब *मारिये इस शक्ति शाली शत्रु का शीघ्रता से संहार कीजिये।*

हे स्वामिन्! आप शुद्ध रूप वाले हैं हृदय रूपी आकाश में उड़ने वाले पुनीत पक्षी हैं सब जीवों के सभी कार्यों के सदा सर्वदा सर्वत्र साक्षी हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप हैं आपकी अमल विमल धवल कीर्ति दशों दिशाओं में व्याप्त है आप अनादि अनन्त अजर अमर अच्युत हैं आप साधु जनों द्वारा सेवित हैं *भक्ता-*नुग्रह कातर हैं आप भव सागर में डूबते हुए शरणागतों के लिये पुनीत पोत रूप हैं। आप अगतियों को गति दाता हैं दुखियों के तारक माता हैं। संसार पथ के पथिकों को शरणदाता हैं उनके उद्धारक हैं आपके पुनीत पाद पद्मों में हम पुनः पुनः प्रणाम करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! देवताओं ने भगवान की बहुत कुछ स्तुति की उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने जैसे दधीचि मुनिकी अस्थियों से अस्त्र बनवाकर वृत्र का वध कराया

वह प्रसंग विस्तार पूर्वक मैंने भागवती कथा प्रसंग में वर्णन किया ही है। इस प्रकार मैंने यह देवताओं द्वारा कृत भागवत स्तुति आप से कही अब जिस प्रकार रण में वृत्रासुर ने भगवान् की दिव्य स्तुति की उस स्तुति को मैं आप से कहूँगा। यद्यपि उसका वर्णन मैंने भगवती कथा के प्रसंग में भी किया है। किन्तु वह दिव्य स्तुति तो नित्य बारम्बार पढ़ने सुनने और मनन करने की वस्तु है। *उसका जितना भी अधिक वर्णन किया जाय उतना* ही उत्तम है।

छप्पय

हे त्रिभुवन पतिदेव ! दया देवनि पै कीजे।
असुर मारि अखिलेश अभय अवअमरनि दीजे॥
विभु सरवज्ञ उदार सकल घट घट की जानें।
हम तो सब कछु पिता पितामह प्रभु कूँ मानें।
भव पथ श्रम तैं श्रमित हम, तव पद छाया अति सुखद।
भगत बछल भ्रम भय हरहु, धरहु शिरनि पै कर वरद॥

पद

शरन प्रभु चरननि की हम आये।
दैत्य देइ दुख दुसह दयानिधि, हम सब मारि भगाये॥१॥
सरव समर्थ सार सारनि के, शरनागत अपनाये।
गोद्विज सुर साधुनि सेवा हित, अगनित वेष बनाये॥२॥
कच्छ वराह, विप्रवटु, अरु नरसिंह कहाये।
विश्व विधायक विपति विभंजक, वेद विमल यश गाये॥३॥
वृत्र विपतितैं विभो ! बचाओ विश्वम्भर कहलाये।
पुनि पुनि पद पदुमनि में प्रनवें प्रनत परम पद पाये॥४॥

देवगणकृत प्रत्यक्ष स्तुति

देवाऊचुः

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥ १ ॥
यत् ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ।
नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥२ ॥

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथपरमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाटद्वारे चित्तेऽपावृतआत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥३॥ दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥४॥ अथ तत्र भवान् किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥५॥ न हि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगणे ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्प-

वितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रयदुर वग्रहवादिनांविवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूप-द्वयाभावात् ॥६॥ समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥६॥ स एव हि पुनः सर्ववस्तूनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्व-प्रत्यगात्मत्वात् सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यव-शेषितः ॥८॥ अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एका-न्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निर-न्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थ-कुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥६॥ त्रिभुवना-त्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥१०॥ अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्ग-विवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिरशिशि-

रस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्ता-पमनघार्हसि शमयितुम् ॥११॥ अथ भगवंस्तवास्माभिर-खिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्म स्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाश-शरीरस्य साक्षात् परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद् विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिर-ण्यरेतसः ॥१२॥ अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भग-वतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिन-संसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसा दिताः ॥ १३ ॥

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ।
ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥१४॥
हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय,
कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता,
अन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥१५

-*-

वृत्रासुर कृत भगवत् स्तुति

(४७)

अहं हरे तव पादैक मूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ११ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

वृत्रासुर रनमाहिँ इन्द्रकूँ बहु सिख दीन्हीं।
प्रकटे प्रभु प्रत्यक्ष असुरपति विनती कीन्हीं॥
हौं तव दासनि दास स्वरग अरु मोक्ष न चाहूँ।
धेनु वत्स शिशु पक्षि विरहिनी सम बनि जाऊँ॥
मनमोहन ! मनमहँ बसहु, वानी गुन नामनि कहै।
तव सेवा में तन निरत, करत दण्डवत नित रहै।

दुःख में भी जिनकी बुद्धि विचलित न हो, किसी योनि में आकर भी जिनकी भगवत् स्मृति कुंठित न हो, उत्सव में शोक में

---

* भगवान् की रणक्षेत्र में स्तुति करते हुए भक्त वृत्र कह रहा है—"हे हरे ! मैं रण में मर कर फिर भी आपके उन दासों का भी अनुदास होऊँ, जिनको एकमात्र आपके ही चरणकमलों का आश्रय है। हे प्राणनाथ ! मेरा मन आपके ही नामगुणों का गान करे तथा देह भी आपके ही निमित्त कार्य करे।"

वन में, समर में सर्वत्र जो सदा अपने श्यामसुन्दर को ही स्मरण करते रहें वास्तव में भक्त वे ही हैं बड़ा पद पाने से, अधिकाधिक प्रतिष्ठित होने से, सुरों का आधिपत्य पाने से तथा विश्वविख्यात हो जाने से ही कोई कृतार्थ थोड़े हो सकता है। नीच योनि पाने परभी जिसकी वृत्ति बनवारी के पादपद्मों में लग गयी है, वही वास्तव में धन्य है, उसी का जन्म सार्थक है, जीवन का लाभ तो उसी को प्राप्त हुआ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! समर में वृत्रासुर ने इन्द्र को भी विविध भाँति से समझाया, उसे तत्व का उपदेश दिया तथा अपनी भगवान् में दृढ़ निष्ठा जतायी। इतनी देर तक पूर्णनिष्ठा के साथ भगवत् चर्चा करने का परिणाम यह हुआ कि उसे प्रत्यक्ष भगवान् के दर्शन होने लगे। अब उसने इन्द्र से बातें करना बन्द कर दिया। सर्वात्मभाव से सर्वेश्वर की शरण में जाकर दोनों हाथों की अंजलि बाँधकर नयनों से अश्रु बहाते हुए गद्गद् वाणी से भगवान् की स्तुति करने लगा। स्तुति करते करते अत्यन्त आर्त स्वर में वृत्रासुर कह रहा है—"प्रभो! मैं आपकी शरण में हूँ। आप मुझे अपना लें, अपना बनालें, मेरा सर्वस्व आपके ही लिये हो। मैं प्रार्थना इस कामना से नहीं करता कि मेरी आसुरी योनि समाप्त हो जाय। योनि कोई भी हो, इससे आत्मा में तो कोई अन्तर पड़ता नहीं। राजा है वह चाहे सुन्दर वस्त्र पहिन ले या मलिन फटे पुराने। वस्त्रों से उसके व्यक्तित्व मे तो कोई अन्तर आता नहीं। मैं यह भी नहीं चाहता कि मुझे स्वर्गीय भोग प्राप्त हो जायँ। भोग तो तुच्छ हैं नाशवान् हैं, इन सबका परिणाम दुःख ही है, वे चाहें भौम सुख हों अथवा स्वर्गीय सुख। सभी क्षणभंगुर हैं, सभी अनित्य हैं सभी अन्तवन्त हैं। देवता भी पुण्यक्षीण होने पर ढकेल दिये जाते हैं। स्वामिन्!

मुझे इन्द्र पद भी नहीं चाहिये। इन्द्र की दुर्दशा तो मैं प्रत्यक्ष ही देख रहा हूँ, उसे अपने पद की सुरक्षा के निमित्त कैसे कैसे घृणित कार्य करने पड़ते हैं। जब तीनों लोकों का स्वामी अमरपति इतना दुखी है, तो पृथिवी के सार्वभौम सम्राट् की तो बात ही क्या है। स्वर्ग भी तीन प्रकारका है भूस्वर्ग विलस्वर्ग और द्युस्वर्ग। मुझे न तो सम्पूर्ण पृथिवी का साम्राज्य चाहिये न नीचे के अतल वितल रसातल आदि का आधिपत्य चाहिये, न इन्द्रपद चाहिये और यहाँ तक कि ब्रह्मपद की भी मुझे आकांक्षा नहीं।

हे सर्वसौभाग्य समुद्र! हे मोक्षदाता! आप यह न सोचें कि मैं मोक्ष के लिये, अपवर्ग के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ, प्रभो! मुक्ति लेकर मैं क्या करूँगा, जिसमें सेवा नहीं, पूजा नहीं, सरसता नहीं, भक्ति नहीं, रसास्वादन नहीं। मुझे तो भक्ति चाहिये एकमात्र भक्ति। आपके चरणकमलों की भक्ति तो अत्यन्त दुर्लभ है, उसकी भी मैं चेष्टा मानता हूँ। मैं तो चाहता हूँ, जो आपके दास हैं, सन्त हैं, भगवत् भक्त हैं, उनके जो दास हैं उनका भी मैं दास बन जाऊँ। आपके दासों का अनुदास बन जाऊँ, तो मैं अपने को धन्य समझूँ, अपने म को सफल मानूँ, अपने जीवन को कृतकृत्य अनुभव करूँ।

हे मनमोहन! मेरा मन आपकी ही बाँकी झाँकी का सदा सर्वदा चिन्तन करता रहे। मेरे प्राण सदा आप परमप्रिय प्राणनाथ की ही पुकार करते रहें। श्वास श्वास पर आपका ही स्मरण हो। प्रभो! मेरी वाणी सदा आपके सुमधुर परमपावन नामों का तथा गायकों के गायनों के परमधन गुणगणों का ही गान करती रहे। मेरा शरीर सदा आप स्वामी की सेवा में ही संलग्न रहे। जो कार्य करे आपके और आपके अनुचरों के ही निमित्त करे। हे स्वामिन्! मुझे तो एकमात्र आपके चरणकमलों का ही आश्रय

है, मैं आप अखिलपति को छोड़कर अन्य किसी को जानता ही नहीं।

हे कमलनयन ! मुझे सदा आपका ही एकमात्र आधार रहे, आपकी आशा रहे। मैं आपका ही सदा निहारता रहूँ। जैसे अण्डे से निकले तत्काल के बच्चे अपनी माँ की बाट जोहते रहते हैं, उन्हें माता के अतिरिक्त कोई अन्य आधार नहीं। अथवा जैसे तत्काल की व्याई गौ का बछड़ा माँ के लिये सदा हम्मा हम्मा करके चिल्लाता रहता है, तड़पता रहता है, बिलबिलाता रहता है, उसी प्रकार मैं भी आपकी स्मृति में तड़पता रहूँ चिल्लाता रहूँ छटपटाता रहूँ। गोवत्स का तो दुग्ध पान करने का कुछ स्वार्थ भी रहता है, किन्तु प्रभो ! मेरी छटपटाहट निःस्वार्थ हो कामना रहित हो, केवल आपके प्रति विशुद्ध प्रेम ही हो। जैसे विदेश को गये पति के लिये पतिव्रता विरहिणी बिल-बिलाती रहती है छटपटाती रहती है। व्याकुल बनी रहती है। वह केवल अपने पति के दर्शनों की ही भूखी रहती है, इसी प्रकार प्रभो ! मैं भी आपके प्रेम में ही निमग्न रहूँ, समस्त काम-नाओं से रहित होकर आपके ही दर्शन करने के निमित्त व्याकुल बना रहूँ।

स्वामिन् ! मेरी एक और भी विनती है। किये हुए कर्मों के कारण यदि मुझे नाना योनियों में भ्रमण करना पड़े जाना पड़े, जन्म लेना ही पड़े तो लेता रहूँ। मेरे जन्मकर्म के चक्र को मेट दो, मेरे आवागमन को समाप्त कर दो, इसके लिये प्रार्थना नहीं करता। कर्मवश सहस्रों जन्म लेने पड़ें यह मुझे स्वीकार है, किन्तु उसमें एक ही संशोधन चाहता हूँ मुझे पवित्र कीर्तिपावन यश वाले आप प्रभु के भक्तों का ही संग मिले। जिस योनि में भी भाग्यवश जन्म लेना पड़े तो मुझे जो साथी मिलें सभी भग-

वत् भक्त ही मिलें। मुझे जो भी कुछ करना पड़े भक्तों के साथ ही करना पड़े। भगवत् भक्तों से ही मेरा संसर्ग हो उन्हीं के साथ उठूँ, बैठूँ खेलूँ कूदूँ खाऊँ पीऊँ अर्थात् जो भी करना हो भक्तों के द्वारा ही करना पड़े। जो आपके भक्त नहीं हैं सदा आपकी विश्वमोहिनी माया के कारण संसारी झंझटों में ही फँसे रहते हैं। मृगनयनी, मनहरमुखी पत्नी के विषय सोचते रहते हैं, जो संसारी सुखों को ही सर्वस्व समझते हैं, जिन्हें उठते बैठते अपने परिजनों की चिन्ता बनी रहती है। मेरी स्त्री का निर्वाह कैसे होगा, वह किस प्रकार सुख पावेगी कैसे मुझसे अधिकाधिक प्यार करेगी, कैसे मेरे पुत्र पुत्री पावेंगे कैसे उनके दुख दूर होंगे। कैसे उनकी वृत्ति चलेगी, कैसे मेरा सुन्दर सुसज्जित घर बनेगा, कैसे सब लोग उसकी प्रशंसा करेंगे, कैसे अधिकाधिक धन मेरे पास आवेगा कैसे मैं सबसे अधिक धनी बनूँगा, छलसे, बलसे कला कौशल से कैसे मैं सम्पत्तिवान् बनकर सबसे श्रेष्ठ कहलाऊँगा। इस प्रकार जो सदा संसारी कार्यों में ही निमग्न रहते हैं, जिनके लिये सब कुछ विषय भोग ही हैं। ऐसे संसारी भोगों में आसक्त रहने वाले कामी पुरुषों का संग मुझे भूलकर भी किसी भी योनि में न हो। जब भी मैं जन्म लूँ जिस योनि में भी उत्पन्न होऊँ उसी में मुझे आपके चरणानुरागी भगवत् भक्तों का ही संग हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार वृत्रासुर स्तुति करके युद्ध में गया और वहाँ इन्द्र के हाथों मरकर परमपद का अधिकारी बना। यह मैंने आपसे वृत्रासुर की स्तुति कही। अब जैसे नारदजी ने चित्रकेतु राजा को जैसे स्तोत्र विद्या का उपदेश दिया उस स्तोत्र को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

करमनि के अनुसार विविध योनिनि महँ जाऊँ।
चिन्ता नहिँ परि प्राननाथ, प्रिय यह वर पाऊँ॥
तव दासनि को दास बनूँ हौं जनम जनम में।
मिलै न तिनि को संग लिप्त जे दारा धन में॥
द्रवहु दीन पै दयामय, देहु दरस प्रभु अस सतत।
तन मन बानी तैं रहैं, तव सेवामहँ नित निरत॥

पद

स्वरग अपवरग नाथ ! नहिँ माँगू।
तव भगतनि को भगत कहाऊँ, नितनित तिनि पग लागूँ॥१॥
कथा कीरतन संतनि सेवामहँ, अतिशय अनुरागूँ।
विषय भोग महँ फँसे नरनितैं, दूरि दूरि हौं भागू॥२॥
माँ हित शिशु रोवत त्यों निज मन, प्रेम पाग में पागूँ।
मोह निशा में सोवत सब जन, विरह माहिँ हौं जागूँ॥३॥

वृत्रासुर कृत भागवत स्तुति

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः॥१
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे॥२
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥ ३ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः। त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥ ४ ॥

राजा चित्रकेतुको नारदजी द्वारा * स्तोत्र

(४८)

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥

(श्री भा० ६ स्क० १६ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

चित्रकेतु सुत मरयो आइ नारद समुझायो।
दुःख हरन के हेतु शेष को मंत्र बतायो॥
चतुर व्यूह भगवान् चरन तव शीश नवाऊँ।
नाम निखिल नरसिंह सुयश तव कैसे गाऊँ
जो सब जग में रमि रहे, नित्य निरंजन प्रेम घन।
अज अच्युत तिनि चरन महँ, बार बार मेरो नमन॥

जो जैसी भावना का होता है, उसे भगवान की उसी भावना की उपासना बतायी जाती है। जो शुद्ध सात्विक भाव के सरल साधक होते हैं उन्हें सत्वमूर्ति भगवान् विष्णु की

*महाराज चित्रकेतु को विद्या का उपदेश करते हुए नारद जी कहते हैं- मैं आप ओंकार स्वरूप को नमस्कार करता हूँ, आप भगवान् वासुदेव का मैं ध्यान करता हूँ। चतुर्व्यूह में प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण स्वरूप आप परमात्मा को प्रणाम है।

पासना प्रिय होती है, जिनका स्वभाव राजस है, वे पितर, मनुप्रजापति तथा ब्रह्माजी के रूपमें उपासना करते हैं, जो तामसी प्रकृति के हैं, वे भूत, प्रेत तामसी अन्य शक्तियाँ, रुद्र तथा संकर्षण की उपासना करते हैं। सत्वमूर्ति भगवान् तो एकही है, कार्य भेद, भाव भेद से प्रतीत होते हैं। वास्तव में तो वे नाम रूप से सर्वथा रहित एक अद्वितीय अज तथा अच्युत हैं, कैसे भी हो, किसी भावसे भी हो, जो भगवान् की शरण में जाता है, वह सभी दुःख द्वन्दों से निर्मुक्त होकर प्रभु के परम प्रेमका अधिकारी बन जाता है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! शुरसेन देश के एक राजा थे, बहुत सी रानियाँ होने पर भी उनके कोई सन्तान नहीं थी। अङ्गिरा मुनिके आशीर्वाद से उनके एक पुत्र हुआ। ईर्ष्यावश अन्य रानियों ने उसे विष देदिया। पुत्र मर गया। उस समय शोकाभिभूत राजाके समीप नारदजी के सहित अङ्गिरामुनि पुनः आये। राजाको बहुत प्रकार से समझाबुझा कर भगवान् नारद ने उन्हें यह संकर्षण स्तोत्र विद्या प्रदानकी। उस स्तोत्रका जो भाव है उसे मैं आपको बताता हूँ।

राजा को उपदेश करते हुए नारद जी कह रहे हैं—राजन्! तुम नित्य इस स्तोत्रका निरन्त पाठ करना। कहना—हे ओंकार स्वरूप भगवन्! मैं आप को नमस्कार करता हूँ। अन्तः करण चतुष्टय के अधिष्ठातृ देव आप वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप से अवस्थित हैं। अतः भगवान् वासुदेव जो बुद्धि तत्व के अधिप हैं उनको नमस्कार है, संकर्षण भगवान् जो अष्ठिातृ देव हैं उनको नमस्कार है, अनिरुद्ध जो चित्त के अधिष्ठातृ देव हैं उनको वारम्वार प्रणाम है। हे प्रभो! आप विज्ञान

मात्र हैं, अर्थात् आप के किसी भी अंश में अणुमात्र भी जड़ता नहीं, शुद्ध विज्ञान स्वरूप हैं ऐसे आप को नमस्कार है। आप परमानंद मूर्ति हैं अर्थात् आप से अधिक आनंद कहीं भी नहीं है निरतिशय सुख स्वरूप हैं ऐसे आपको बारम्बार प्रणाम है। आप अपनी अन्तरात्मा में ही रमण करते हैं, इसीलिये विज्ञजन आप को आत्माराम कहते हैं, आप राग से रहित अतः शांत स्वरूप हैं आप में स्थूल तथा अणु का भेद भाव नहीं हैं, आप की द्वैत दृष्टि निवृत्त हो चुकी है ऐसे आप अद्वय एक रस प्रभु के पाद पद्मों मे पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! आप ने अपने आत्मानुभव से भूख, प्यास, शोक मोह जरा मरण रूपी तरंगों को स्वयं ही शांत कर रखा है, अथवा आप में उर्मियों का लेश मात्र भी नहीं, आप इन्द्रियों के एक मात्र अधीश्वर हैं, इसीलिये हृषीकेश कहलाते हैं आप इन्द्रियों के नियन्त्रक तथा कारणों के ईश हैं। आप अपने स्वरूप से तथा गुणों से अतिशय महान हैं और यह समस्त विश्व ही आप की मूर्ति हैं ऐसे आप सर्वेश्वर को बारम्बार नमस्कार है।

स्वामिन्! आप मन तथा वाणी के विषय हैं वाणी तथा मन आप को बिना प्राप्त किये ही लौट आते हैं, आप नाम और रूप से रहित हैं आप केवल चैतन्य स्वरूप हैं, एक अद्वय हैं, चिन्मात्र तथा सभी कार्य कारण से सदा सर्वदा रहित हैं, आप को प्रणाम है आप हमारी रक्षा करें।

हे जगदाधार! यह सम्पूर्ण जगत् आपमें स्थित है,आपके द्वारा ही उत्पन्न हुआ है, आप के द्वारा ही पालन हो रहा है और आप के ही द्वारा अन्त में इसका विनाश हो जायगा, आप में ही लोप

हो जायगा। आप के अतिरिक्त जगत में और है ही क्या। जैसे मिट्टी से घड़े, सकोरे, परई, नाद, करवा तथा अन्य अनेक नाम तथा भिन्न भिन्न आकृति वाले बर्तन बन गये, बर्तन बनने के पूर्व भी मिट्टी थी, बर्तन बन गये तब भी मिट्टी ही मिट्टी थी, फूट जाने पर घड़ा भले ही न रहे मिट्टी तो ज्यों की त्यों बनी ही रहेगी। केवल आकृति और नाम के कारण बीच में वह भिन्न भिन्न नामों से बोली जाने लगी थी। नहीं तो तीनों काल में मिट्टी ही थी। मिट्टी ही रहे और मिट्टी ही रहेगी। इसी प्रकार जगत के नाम पड़ने के पूर्व भी आप थे, जगत् जब बना तो वस्त्र में ताने बाने की भाँति भी आप रहे और जगत के अन्त होने पर भी ज्यों के त्यों बने रहेंगे। आप तो त्रिकाल सत्य तथा एक रस हैं, ऐसे सदा सम भाव से विद्यमान् रहने वाले परब्रह्म स्वरूप प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे प्रभो! जैसे वायु सदा सर्वदा सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु हम उसे नेत्रों द्वारा देख नहीं सकते। जैसे आकाश बाहर भीतर व्याप्त है, फिर भी वह विषय नहीं है। इसी प्रकार आप भी समस्त प्राणियों भीतर बाहर सर्वत्र समभाव से अवस्थित हो, किन्तु मन, बुद्धि, इन्द्रियां तथा प्राण भी आप को स्पर्श नहीं कर सकते। आप इनका विषय नहीं। आप अन्तर और बाहर में बैठे हुए नारायण को हम नमस्कार करते हैं।

प्रभो! आपकी शक्ति के बिना देह जड़ है शव है, व्यर्थ है, आप की शक्ति से इन्द्रियाँ कुछ व्यापार नहीं कर सकतीं प्राणों में गति नहीं, मन में मनन करने की योग्यता नहीं, बुद्धि में विवेक की क्षमता नहीं। ये सब तो तभी कार्य करते हैं, जब आप की इन में व्याप्ति हो जाय। जैसे लोहे का एक गोला है जब वह अपने रूप में उसे उठा लो सिर पर रख लो कुछ भी न होगा,

किन्तु वही जब दहती अग्नि में पड़ जाय और अग्नि की दाहक शक्ति उसमें व्याप्त हो जाय, तो वह सबको जलाने में समर्थ हो सकता है, जैसे अग्नि का शक्ति बिना लोहा दहन कार्य में असमर्थ है वैसे ही बिना आप के चैतन्यांश के देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, और बुद्धि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था के कार्यों को करने में असमर्थ हैं। ऐसे आप सर्व नियामक स्वामी के पाद पद्मों में प्रणाम है।

हे ओंकार स्वरूप सर्वेश! आप महा विभूति शाली हैं संसार की सभी विभूतियों का स्रोत आप में ही है। आप महापुरुष तथा महानुभाव हैं, ऐसे महाविभूति पति आप महापुरुष को बारम्बार नमस्कार है। हे भक्त वृन्द वन्दित भक्त वत्सल! आप के चरण कमल के समान मोहक तथा आकर्षक हैं, जितने भी श्रेष्ठ श्रेष्ठ भक्त हैं, उन सब का समूह जब आप के चमकीले सरस, सुगन्धित, मृदुल, सुखद चरणों की वन्दना करता है, तो उनके अर्ध विकसित कर कमल कलिकाओं के समान कमनीय दिखायी देते हैं, उन अरुण वरण के अर्धस्फुटित कलिकाओं द्वारा जब चरण वन्दित होते हैं, तब उनकी शोभा अनिर्वचनीय बन जाती है। उसके निर्वाचन करने की कथन करने की सामर्थ्य किसी में है ही नहीं। वह शोभा तो अनुभव गम्य है। उन युगल चरणारविन्दों में हे परमेष्ठन् प्रभो! हम पुनः पुनः प्रणाम करते हैं।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने देवर्षि नारद द्वारा राजा चित्रकेतु को दी हुई संकर्षणीय विद्या का वर्णन किया, अब जिस प्रकार बिना कुछ खाये केवल जल पीकर सात दिनों तक राजा ने इसका अनुष्ठान किया और सात दिनों के अनन्तर वि... के प्रभाव से भगवान् संकर्षण ने उन्हें दर्शन दिया और उन्होंने शेष

जी की जो स्तुति की, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। आप सावधानी से श्रवण करें।

छप्पय

मन वानी के विषय न जिनको नाम रूप है।
कारज कारन रहित सचिदानँद स्वरूप है॥
प्रान, करन, मन, बुद्धि परसि जिनकूँ नहिं पावें।
भीतर बाहर व्योम सरिस तन में न दिखावें॥
चेतनता जिनकी मिले, तब तन प्रान सकाम हैं।
संतनि सेवित चरन तिनि, पुनि पुनि पुन्य प्रणाम हैं॥

पद

पदुम पद पतित प्रनत परमेश्वर।
चतुर व्यूह विज्ञान मात्र अज, विश्वरूप विश्वम्भर॥१॥
आत्माराम द्वैत तैं वरजित, शान्त रूप सरवेश्वर।
जिनमें जगत भयो जिनि द्वारा, धरें रूप अज हरिहर॥२॥
व्योम वायु सम दीखत नाहीं, बिहरें बाहर भीतर।
तन, मन, प्रान, करन, धी जड़ सब चेतन करो कृपाकर॥३॥
भक्तनि सेवित मृदुल सरस अति तव पद पदुम सुधाकर।
तिनि कर कमल कलित कलिका सम शोभित रहत निरंतर॥४॥

नारदोपदिष्ट स्तोत्र

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ १ ॥
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥२॥
आत्मानन्दानुभूत्यैवन्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥३॥
वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ।
अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥४॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ।
मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥५॥
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥६॥
देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ।
नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद् द्रष्ट्रपदेशमेति ॥७॥
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय ।
महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढ-
निकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल-
परमपरमेष्ठिन् नमस्ते ॥८॥

❧

राजा चन्द्रकेतु कृतसंकर्षण स्तुति (१)

(४६)

अजित जितः सममतिभिः
साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजिता स्तेऽपि च भजता—
मकात्मनां य आत्मदोऽति करुणः ॥*

(श्री भा० ६ स्क० १६ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

चित्रकेतु सुत शोक अङ्गिरा तुरत मिटायो ।
नारद तैं लै मंत्र शेष पद ध्यान लगायो ॥
सात दिवस में शेष दये दरशन दुख भागे ।
देखि इष्ट प्रत्यक्ष करन इस्तुति नृप लागे ॥
भगतनि के आधीन प्रभु, सरवसु तिनि के आप हों ।
करो हरो पालो जगत, सबके तुम पितु मातु हो ॥

भगवान् एक हैं जो जैसी भावना से जिस रूप की उपासना करता है उसे उसी रूप के उसकी भावनानुसार दर्शन होते हैं

---

* भगवान् संकर्षण की स्तुति करते हुए राजा चित्रकेतु कह रहे हैं—"हे अजित ! आप कभी हारते नहीं, किन्तु समदर्शी साधु पुरुषों द्वारा आप जीते गये हैं । उनके सम्मुख आपने पराजय मानली है । आपने

और सभी उनकी समानरूप से स्तुति करते हैं। इष्ट के नाम में तथा रूप में बाहरी भेद भले ही प्रतीत हो किन्तु तत्व एक ही है। अतः प्रार्थनायें चाहें जिस रूप की हों भिन्न भिन्न नाम वाले देवताओं की हों सब एक सी ही होती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! राजा चित्रकेतु जो पुत्र शोक से अत्यन्त ही दुखी हो रहा था तब महर्षि अङ्गिरा तथा नारद जी ने उसे समझाया नारदजी ने उसे संकर्षण विद्या दी जिसका वर्णन मैं पीछे कर चुका हूँ। राजा ने नारदजी की बतायी हुई विद्या का सात दिनों तक अनशन करके केवल जल पीकर अनुष्ठान किया। सात दिनों में ही उस विद्या के प्रभाव से राजा उसी शरीर से विद्याधरों के राजा बन गये। फिर भी वे उसका अनुष्ठान करते रहे। श्रद्धासहित अनुष्ठान के प्रभाव से उनकी गति अत्यधिक बढ़ गयी और उन्हें स्वयं साक्षात् भगवान् संकर्षण के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। अपने इष्ट देव के दर्शन पाकर उन्हें प्रत्यक्ष अवलोकन करके राजा के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा वे गद्गद वाणी से भगवान् संकर्षण की स्तुति करते हुए कहने लगे—हे भगवन् ! संसार में आप अजित कहलाते हैं अर्थात् आप को कोई जीत नहीं सकता। किन्तु भक्तों के सम्मुख आप अपने नामकी सार्थकता को भुला देते हैं वहाँ आप पराजित बन जाते हैं भक्त आप को जीत लेते हैं अपने वश में कर लेते हैं हृदय में बिठा लेते हैं। जो साधु पुरुष समदर्शी हैं भेदभाव से रहित हैं सरल स्वभाव के हैं वे आपके वश में हो

भी उन्हें जीत लिया है। जो निष्काम भाव से आपका भजन करते हैं उन्हें आप अपनी आत्मा को दे डालते हैं क्योंकि आप तो अत्यन्त कृपालु हैं।"

जाते और आप उनके वश में हो जाते हो। आप कुछ उनके बल पुरुषार्थ से थोड़े ही वश में होते हैं। आपको कोई जप तप यज्ञानुष्ठानादि साधनों द्वारावश में करना चाहे तो नहीं कर सकता। क्यों कि आप साधन साध्य नहीं। बेचारे साधन आप तक कैसे पहुँच सकते हैं आप तो कृपा साध्य हैं। स्वयं ही आप दया क सागर हैं कृपा के समुद्र हैं अनुग्रह के अर्णव हैं। कृपालुता के कारण ही आप अपने भक्तों को अनन्य उपासकों को निष्काम सेवकों को अपना सर्वस्व दे डालते हैं। यहाँ तक कि अपने आपको भी उनको अर्पण कर देते हो।

प्रभो! कहें कि आप इस संसार के कर्ता हो तो बात बनती नहीं क्यों कि आप सभी क्रियाओं से रहित हो फिर भी आपके अतिरिक्त कोई संसार का कर्ता दृष्टि गोचर होता नहीं। यह कहें कि आप इसके पालक हो तो भी उचित जँचता नहीं। कारण कि आप माया मोह से सर्वथा रहित हो फिर दूसरा कोई सम्पूर्ण चराचर का पालन करने वाला दीखता नहीं। इतनी सामर्थ्य किसमें है कि इतने भारी विश्व का इतने अगणित जीवों का सविधि लालन पालन कर सके। आपको लोग संहर्ता प्रलय करता तथा सबको अपने में लीन कर्ता कहते हैं। आप निष्प्रयोजन निष्काम निरंजन हैं आपको क्या पड़ी कि सबका संहार करते किन्तु आपके अतिरिक्त कोई इतने बड़े पसारे को समेट भी तो नहीं सकता। संहार की सामर्थ्य भी तो सबके समीप नहीं होती। इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जगत् की उत्पत्ति स्थिति और विनाश आपकी लीला है। क्रीड़ा है, विनोद है, मनोरंजन है।

हम पुराणों में सुनते हैं ब्रह्मा जी में और विष्णु में परस्पर इसी बात पर झगड़ा हो गया कि हम बड़े तुम छोटे हम बड़े

कोई कहता हम कर्ता हैं कोई कहता हम कर्ता हैं। दोनों के विघाद के समय एक अनादि अनन्त तेज पुँज प्रकट हुआ दोनों में यही निर्णय हुआ कि जो इसका पहिले आदि या अन्त का पता लगा आवे वही बड़ा। दोनों ऊपर नीचे गये न किसी को आदि का पता चला न अन्त का पता चले भी तो कैसे चले आपका आदि अन्त हो तब तो यहाँ तो न आदि ही है न अन्त ही है आपअनादि अनन्त एकरस अखण्डअद्वय अविनाशी अजर अमर, अलौकिक अवर्णनीय तत्व हैं। ब्रह्मादिदेव जो आपके अंश के भी अंश हैं वे व्यर्थ में अपने को कर्ता मानकर भेद बुद्धि द्वारा परस्पर में अकारण स्पर्दा करते हैं लड़ते भिड़ते हैं। यह भी आपकी ही लीला है।

हे सत्य स्वरूप ! हम देखते हैं सम्पूर्ण सृष्टि में छोटी से छोटी वस्तु में भी आपकी सत्ता है और बड़ी से बड़ी वस्तु में भी आप ही विद्यमान् हैं। तीनों गुणों की साम्यावस्था में जोसर्व प्रथम विकृति होती है, उसे सबसे महान तत्व कहते हैं, उस महत्तत्व से बड़ा कोई तत्व नहीं। जिसके टुकड़े न हो सकें जो अति सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सके उसे अणु कहते हैं, उस अणु से भी किसी छोटी वस्तु की कल्पाना की जा सकती हो उसे परमाणु कहते हैं संसार में वही सबसे छोटी वस्तु है। इन बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी वस्तुओं में आप ही हो जब इनकी उत्पत्ति हुई तब भी आप ही थे। जब ये हो गयीं तब भी आप थे और जब इनका विनाश हो गया तब भी आप

ज्यों के त्यों ही बने रहे। इनके आदि में मध्य में और अन्त में—तीनों ही अवस्थाओं में विद्यमान रहे। इन पदार्थों का आदि मध्य और अन्त हुआ। किन्तु आपका न आदि है न मध्य है न अन्त हुआ। आप स्वयं अनादि अनन्त एकरस हो। निश्चल एक तत्व तो सब में आप ही हैं। सब उत्पन्न होते हैं, आप कभी उत्पन्न नहीं होते। सब में विकार होता है आप निर्विकार हैं, सब का अन्त होता है आप अन्त से रहित हैं। इन वस्तुओं के आदि में भी आप ही थे, अन्त में भी आप ही रहेंगे, जो आदि अन्त में होता है वही मध्य में भी रहता है, इससे सिद्ध हुआ कि जो यह नाना नाम रूपों में प्रतीत होरहा है उसमें आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

प्रभो! ये नाना नगर, पुर पत्तन, गिरि, वन नदी, जनपद, राष्ट्र महाराष्ट्रवाली पृथिवी के हैं जितनी बड़ी यह पृथिवी है,दस गुना जलतत्व है, जलतत्व से दसगुना तेजतत्व है, तेजतत्व से दसगुना वायुतत्व है, वायुतत्व से दसगुना आकाश तत्व है आकाश तत्व से दसगुना अहं तत्व और अहं तत्व से दसगुणा प्रकृति तत्व है। इस सप्तावरण संयुक्त अंड का नाम ब्रह्माण्ड है, इस एक ब्रह्मांड के स्वामी ब्रह्मा हैं। ऐसे ऐसे अगणित ब्रह्मांडों का समूह आप में इस प्रकार घूमता रहता है जैसे झरोखा के छिद्र से प्रकाश के साथ अगणित छोटे छोटे परमाणु घूमते हुए दिखायी देते हैं। इन अगणित ब्रह्माण्डों की आपके यहाँ कोई गणना ही नहीं आपके प्रत्येक रोम कूप में ऐसे करोड़ों असंख्यों ब्रह्माण्ड फैल फूटकर घूमते रहते हैं।

हे सर्वस्वदाता! यह मानव रूप क्षुद्र प्राणी चाहता क्या है सुन्दर रूप, विपुल धन, संसार में यश और शत्रु का नाश।

सदा देवी देवताओंके समन्नयही रट लगातारहता है-"रूपंदेहि धन-देहि यशोदेहि द्विषोजहि" ये क्षुद्र देवी देवता भी इसके श्रम के अनुसार कुछ दे देते हैं। परन्तु जब वे देने वाले ही स्थायी नहीं तो उनके दिये हुए भोग स्थायी कैसे हो सकते हैं। एक कोई संसारी राजा है, वह किसी नट की कला पर नर्तकी के नृत्य पर, तार्किक की तर्क पर पंडित के पांडित्य पर प्रसन्न हो गया। उसने उन्हें दो दो चार चार गाँव पारितोषिक रूप में दे दिये। दूसरे दिन किसी अन्य राजा ने उस राज्यपर चढ़ाई की राजा को बन्दी बनाकर स्वयं वहाँ का राजा बन बैठा, अब कल वाले राजा ने जो गाँव दिये हैं उन्हें वह छुड़ा सकता है। जब राजा ही न रहा तो उसका दिया उपहार कै दिन रहेगा। उसी प्रकार तुमने इन्द्र की उपासना की प्रसन्न होकर स्वर्ग में एक विमान दे दिया। दस बीस अप्सरायें दे दी। कुछ काल पश्चात् इन्द्र बदल गये दूसरे इन्द्र आगये तो चाहे दे या न दें। स्वयं इन्द्र लोक भी तो क्षयिष्णु है, विमान भी तो नाशवान है। अप्सरायें भी तो अन्तवन्त हैं। फिर इन क्षुद्र वस्तुओं के लिये मरना मारना दूसरों से ईर्ष्याद्वेष करना पशुता नहीं तो और क्या है ? जैसे एक पशु दूसरे पशु की घास के लिये लड़ता है, झगड़ता है वही दशा इन नर पशुओं की भी है।

हे परमात्मन् ! मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है आप की उपासना करे। आप को चाहे, आप से प्रेम करे, आपकी कृपा की कामना करे। निष्काम भावसे आप का ही भजन करे। कुछ लोग कहते हैं कामना तो कामना ही है। कोई स्वर्ग की कामना से भजन करता, कोई धन की कामना से भगवान् को भजता है कोई मोक्ष कामना से, कृपा कामना से अथवा प्रेम की कामना से। किन्तु आप के प्रति की हुई कामना कामना नहीं कहलाती। जैसे ससुराल की

गाली गाली नहीं होती। मोक्ष की कामना से न सही। आपको तो कोई विषय वासना की ही कामना से भजे तो भी उसका परिणाम बन्धन नहीं होता बन्धन तो वहाँ होता है जहाँ लेने देने वालों में सौदा हो। जहाँ लेने देने वाले स्वार्थी हों लालची हों। हम भले ही विषयी हों, किन्तु आप तो विषय वासनाओं से सदा सर्वथा रहित हैं। हम भले ही अज्ञानी हों, किन्तु आपतो ज्ञान स्वरूप हैं, हम भले ही तीनों गुणों मे रमण करने वाले हों, किन्तु आप तो निर्गुण हैं। फिर आप के प्रति की हुई विषयवासनाओं की इच्छायें कर्म फल दायनी-बन्धनकारिणी-कैसे हो सकती हैं। अंकुर वहीं उत्पन्न होगा जहाँ बीज भी वासनायुक्त हो भूमि भी उर्वरा हो और अनुकूल खादजलका भाव हो। बीज यदि वासना युक्त है और भूमि ऊसर है तो बीज न जमेगा। यदि भूमि उर्वरा है और बीज भुना हुआ है तो कितना भी खाद पानी दो उसमें से अंकुर न निकलेगा। कोई समदर्शी, शान्त स्वभाव वाला साधु, है, उसे कोई गाली दे और उस गाली को वह स्वीकार न करें, तो चाहे कितनी भी भारी गाली क्यों न हो उसके मन को क्षुभित नहीं कर सकती। इसी प्रकार हे प्रभो! आप ज्ञान स्वरूप हैं, निर्गुण हैं। आप के प्रति की हुई विषय वासनायें भी फलदायिनी नहीं होतीं। सत्वरज और तम इन तीनों गुणों के द्वारा ही जीव को दुःख सुख प्राप्त होते हैं। कोई रजोगुणी है उसके प्रति कुछ कह दिया उसने दंड दे दिया। कोई सत्वगुण वाला है, उससे कुछ कह दिया उसने पुरस्कार दे दिया। किन्तु आप ठहरे, निर्गुणी। अतः आप से कैसे भी प्रेम किया जाय, आप के प्रति कैसे भी अनुराग हो कैसे भी सम्बन्ध हो जाय, फिर वे संसार बीज को उत्पन्न नहीं करता। जन्म मरण के बीज का अरोपण नहीं

करता। वह भव बन्धन को काटता ही है ऐसे निर्गुण निराकार आप संकर्षण के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने चित्रकेतु कृत सङ्कर्षण स्तुति कही, इसके शेषांश को आगे कहूँगा।"

छप्पय

लघु बड़ जितनी वस्तु सबनि के आदि अन्त हो।
सर्वकाल में सत्य अनामय अज अनन्त हो॥
तजि तुमकूँ जो अन्यदेवतें भिक्षा माँगें।
जानि बूझि विष पिये सुधा सञ्जीवनि त्यागें॥
दयो भागवत धरमशुचि, आश्रय मुनिगन करि तरहिं।
जिहि लहि मैं मेरी असत्, भेद बुद्धि नर नहिं तरहिं॥

पद

अजित! तुम दासनि हाथ बिकाये।
तुमकूँ प्रान समान भगत प्रिय, तुम उनिके मन भाये॥१॥
हो कृपालु करुना के सागर, पतितहु पार लगाये।
रचौ जगत पालौ संहारौ, पुनि सबतें बिलगाये॥२॥
कोटि कोटि ब्रह्मांड रोमप्रति, भेद वेद नहिं पाये।
ते पशु पामर पुरुष पातकी, भोगनि में भरमाये॥३॥
ज्ञान सरूप निरञ्जन निरगुन, तुममें मन फँसि जाये।
तो फिरि सब भ्रममय भगि जावें, आवागमन नसाये॥४॥

राजाचित्रकेतु कृत-संकर्षण स्तुति (२)

(५०)

जितमजित तदा भवता
यदाहभागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किञ्चना ये मुनय-
आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥*
(श्री भा० ६ स्क० १६ अ० ४० श्लो०)

छप्पय

शुद्ध भागवत ज्ञान चित्त में सुख सरसावें।
भेद बुद्धि कौ परम लोक परलोक नसावै ॥
तव नामनि कूँ गाय श्वपच अगनित तरि जावें।
तो तव दर्शन पाइ परम पद क्यों नहिं पावें ॥
तव दरसन तैं दुरित दुख, दीन बन्धु सब हटि गये।
नारद गुरु के मंत्र तैं, भव भय बन्धन कटि गये ॥

संसार में भागवत धर्म का जो उपदेश करते हैं, प्रचार प्रसार करते हैं, उसकी प्रशंसा प्रानी कर ही क्या सकता है।

---

*महाराज चित्रकेतु कह रहे हैं—"प्रभो ! जब आप ने सकल दोष अमंगलों से रहित परम पवित्र भागवत धर्म का उपदेश दिया तभी सब को जीत लिया । हे अजित ! भागवत कोई साधारण धर्म नहीं है । मोक्ष प्राप्ति के निमित्त सनकादिकों के समान निष्किचन तथा आत्माराम मुनिगण भी इसी भागवत धर्म का आश्रय लेते हैं ।"

जैसे भगवान् अनन्त हैं वैसे ही उनकी लीला कथा भी अनन्त हैं उन अनन्त का उपदेश अनन्त ही कर सकते हैं। अन्तवन्त इन प्राणियों की क्या शक्ति जो अनन्त भागवत धर्मों के सम्बन्ध में कुछ कह भी सकें।

शौनकादि महर्षियों से सूतजी कह रहे हैं मुनियो! शेषावतार भगवान् अनन्त की स्तुति करते हुये महाराज चित्रकेतु कह रहे हैं—"भगवन्! आप की महिमा हम कहाँ तक कहें, आप भगवत् धर्म के मुख्य आचार्य हैं जिनको माया स्पर्श नहीं करती। जो सभी ऋषि महर्षियों के अग्रज हैं, जिन्होंने आजीवन विवाह नहीं किया, जो निष्किञ्चन तथा निष्परिग्रह हैं, जिनकी सदा ५-६ वर्ष की ही आयु बनी रहती है, जो पूर्वजों के भी पूर्वज हैं, भगवान् के अवतार ही हैं, उन सनकादि महर्षियों ने भागवत धर्म के लिये आप का शिष्यत्व स्वीकार किया। बिना सुखायें गीली जटाओं से ही जो आप के चरणों में प्रणाम करके भागवत सुनने बैठ जाते थे और आप के मुख से निसृत भागवत सुधा का पान करते करते अघाते नहीं थे। ऐसे आप भागवत धर्म के उपदेष्टा के सम्बन्ध में हम कह ही क्या सकते हैं। आपने इस अद्भुत अलौकिक अद्वितीय अनुपम धर्म का उपदेश देकर सभी को जीत लिया वास्तव में आप अजित हो गये। तब से समस्त ऋषि मुनि सिद्ध तथा अन्य भक्त गण उसी भागवत धर्म का आश्रय लेकर इस असार, अगाध दुष्पार संसार सागर को बात की बात में तर जाते हैं।

भागवत धर्म के सम्मुख अन्य सभी सकाम धर्म तुच्छ हैं, हेय हैं अग्राह्य हैं। नाना कामनाओं से किये हुए अन्य तुच्छ धर्मों में तो यही वितंडा चलता रहता है। मैं कहता हूँ वही सत्य है; मेरा

ही मार्ग खरा है, तेरा मार्ग खोटा है, मैं बड़ा हूँ, तू छोटा है। मैं अच्छा हूँ, तू बुरा है। इस में मैं तू तू, मेरा तेरा में ही भेद भाव की बातें रहती हैं। इस भेद बुद्धि से जिस धर्म का आचरण किया जाता है, वह निन्द्य है, नाशवान् है, अग्राह्य है, रागद्वेप युक्त है, अधर्म बहुल है। उस धर्म से न उपदेष्टा का ही भला होता है न उपदेश ग्रहण कर्ता का ही कल्याण होता है, न अपना ही हित होता है न जिसकी निन्दा की जाती है जिसे हेय या त्याज्य बताया जाता है उस पर का ही भला होता है। किसी का भी ऐसे धर्म से हित नहीं होता। एक दूसरे के छिद्रान्वेपण में ही लगे रहते हैं, एक दूसरे से ईर्ष्या करने से उनका चित्त सदा संतप्त बना रहता है। वे तो उद्विग्न दुखी होते ही हैं। सर्वान्तर्यामी रूप से घट घट में विराजने वाले आप भी कुछ प्रसन्न होते। विरोध को बढ़ाने वाला, दूसरों के अन्तःकरण पर चोट पहुँचाने वाला दूसरों को दुख देने वाला धर्म धर्म नहीं, वह तो अधर्म है। किन्तु यह भागवत धर्म अविरोधी धर्म है, इसमें अन्य के दोप देखना ही नहीं चित्त को सर्वात्म भाव से आप अनन्त में लगाना ही इसका मुख्य हेतु है।

प्रभो! आप तो समदर्शी हैं, तभी आप ने ऐसे समत्व शुद्ध धर्म का उपदेश दिया है। जो इस धर्म में दीक्षित होता है उसकी दृष्टि कभी परमार्थ से विचलित नहीं होती। अनार्य पुरुप आप के इस भागवत धर्म का अनुसरण नहीं करते क्योंकि वे तो कामवासनाओं में बँधे मर्कटों के समान मैथुनादि विपयों को ही सब कुछ समझते हैं, किन्तु जो उत्तम शरीर वाले पुरुप हैं आर्य जन हैं जिनकी चराचर जीवों में समान दृष्टि रहती है, जो सर्वत्र आप को ही अन्तर्यामी सर्वव्यापक रूप से देखते हैं, अनुभव करते हैं, उन्हीं श्रेष्ठ पुरुपों द्वारा इस अनवद्य परम पावन धर्म का सेवन किया जाता है वे ही इस भागवद

धर्म का आचरण करते हैं, वे ही इसके विशुद्ध नियमों का पालन करते हैं।

भगवन्! जिसने एक बार भी आप का दर्शन पा लिया वही कृतार्थ हो गया, वही संसार सागर से सदा के लिये तर गया वह कृतार्थ हो गया। कुछ लोग शंका करते हैं, एक बार दर्शन करने मात्र से संसार बंधन कैसे टूट सकता है? सो, प्रभो! आप के प्रत्यक्ष दर्शन की बात तो पृथक रही। जो सुकृति हैं, सदाचारी हैं, कुलीन हैं जिन्होंने विधिवत् उपासना की है उनकी तो छोड़ दीजिये, पुल्कस है चांडाल है, सबसे घृणित कुत्ते के मांस को खाने वाला श्वपच है, वह भी यदि एक बार मरते समय श्रद्धा भक्ति पूर्वक आप का नाम ही स्मरण कर लेता है स्मरण न भी कर सके किसी के द्वारा सुन ही ले, तो केवल नाम स्मरण मात्र से ही वह संसार बन्धन से विमुक्त बन जाता है। जब नाम स्मरण मात्र से श्वपच भी मुक्ति का अधिकारी हो जाता है, तो दर्शन करने वाले सुकृति के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है?

प्रभो! मैं अन्यत्र कहाँ जाऊँ। मेरा ही उदाहरण प्रत्यक्ष है। मैं पुत्र शोक से संतप्त हूँ। संसार दावानल में जल रहा था। भयंकर भयाटवी में भटक रहा था विषय वन में भ्रमण करता हुआ अगणित कष्ट पा रहा था। आप की अहैतुकी कृपा के कारण निष्प्रयोजन कृपा करने वाले परोपकार व्रती भगवान् नारद के मुझे दर्शन हुए। उन्होंने यह संकर्षणीय विद्या मुझे प्रदान की और आज्ञा की यदि तुम इसका सात दिन तक निरन्तर जप करोगे, तो संकर्षण प्रभु के दर्शन पाओगे। सो, स्वामिन्! उनके वचन सत्य हुए। जो आप के भक्त हैं आप में परम अनुरक्त हैं ऐसे देवर्षि के वचन भला असत्य हो ही कैसे सकते हैं। उनकी कृपा से मुझे आप के देव दुर्लभ दर्शन सुलभ

हो सके। आप के दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया, मेरे समस्त दोष दुरित दूर हो गये। मेरे अन्तःकरण का समग्र मल धुल गया।

हे अनन्त देव! आपको संसार में कोई बात अविदित नहीं। आप सब के अन्तःकरण की बातें भी जानते हो और बाहरी भी जानते हो। प्राणी जो कुछ मन से सोचता है, वाणी से बोलता है, तथा इन्द्रियों से करता है, आप उसके पहिले उसे जान लेते हो, जान क्या लेते हो सब क्रियायें आप की ही प्रेरणा से तो होती हैं, सब के घट घट में आप ही तो बैठे हुए हो, सम्पूर्ण संसार की आत्मा तो आप ही हैं। प्रभो! मैं आप की महिमा भला क्या कह सकता हूँ। पिपीलिका भला सुमेरु का पार पा सकती है? मेढ़की महासागर को कभी पार कर सकती है, खद्योत कभी सूर्य को प्रकाशित कर सकता है? जिस प्रकार ये सब बातें असंभव हैं, उसी प्रकार आप गुरुओं के गुरु हैं आप की प्रशंसा हम कैसे करें, आप से कुछ कहना हमारा बाल चापल्य मात्र ही है। आप जब चाहें जगत को उत्पन्न कर सकते हैं जब तक चाहें पालन करते हैं, जब इच्छा होता है संहार कर सकते हैं, आप परम गुरु हैं, सर्वथा स्वतंत्र हैं, आप में सब प्रकार का सामर्थ्य है। योगी पुरुष आप की महिमा जानते हैं किन्तु जो कुयोगी हैं, शरीर को ही सब कुछ समझ कर उसी का पालन पोषण में सदा निरत रहते हैं वे भेद बुद्धि वाले भला आपके तत्व को कैसे जान सकते हैं। प्रभो! आप नित्य शुद्ध बुद्ध तथा आनन्द स्वरूप हैं। आप के पाद पद्मों में बारम्बार प्रणाम है।

प्रभो! ये ब्रह्म रुद्रादि देव स्वतः कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं। आप के श्वास लेने पर जगत सृष्टि का संकल्प होता

है। जब प्रथम आप चेष्टा करते हैं तभी ब्रह्मा आदि जगत के कर्ता चेष्टा करते हैं, अर्थात वे भी आप के ही संकल्प का अनुसरण करते हैं चक्षु स्वयं देख नहीं सकती। कर्ण स्वयं सुन नहीं सकते। घ्राणेन्द्रिय स्वयं सुगन्ध दुर्गन्ध का अनुभव नहीं कर सकती। रसना स्वयं रसास्वादन नहीं कर सकती। स्पर्शेन्द्रिय स्वयं मृदु कठिन आदि का निर्णय नहीं कर सकती जब तक आपकी उनको प्रेरणा प्राप्त न हो, जब तक आपकी दृष्टि उनपर न पड़े। आपकी दृष्टि पड़ने पर ही वे अपने अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ हो सकती हैं।

प्रभो! आप अनन्त शक्ति वाले हैं अनन्त प्रभाव वाले हैं अनन्त बल वाले हैं। आप के पराक्रम की कोई थाह कैसे पा सकता है। आप के सहस्र फण हैं, उनमें दिव्य ज्योति है। उन सहस्र फणों में से किसी एक फण के कोने में यह समस्त भूमंडल ऐसे रखा रहता है, जैसे कहीं एक सरसों पड़ी हो। जैसे किसी के घूंघराले घने बालों में छोटी यूथिका का कोई फूल उलझ गया हो और उसे उसका तनिक भी भार प्रतीत न होता हो इसी प्रकार यह इतना भारी भूमंडल आप का सिर पर रखा है, किन्तु आपको इसकी प्रतीति ही नहीं होती। ऐसे अनन्त बल पराक्रम वाले सहस्रशीर्ष भगवान् को बारम्बार नमस्कार है पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! राजा चित्रकेतु की स्तुति से भगवान संकर्षण उन पर अत्यंत ही प्रसन्न हुए, तथा उन्हें तत्व ज्ञान का उपदेश करके उनके सम्मुख वहीं देखते देखते अन्तर्धान हो गये। यह मैंने आप से राजा चित्रकेतु कृत संकर्षण भगवान् की स्तुति कही। अब जैसे हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा जी की स्तुति की है, उस प्रसंग को मैं आप से कहूँगा। आशा है आप सब इसे प्रेम पूर्वक श्रवण करेंगे।

छप्पय

हे अनन्त ! अखिलेश आतमा अखिल जगत की।
कबहूँ कोई कहाँ करे कछु जानत सबकी॥
रवि कूँ ज्यों खद्योत प्रकाशित करि न सकेगो।
त्यों मो मन मति मन्द महातम कहा कहेगो॥
जिनके चेतन अंश तैं, चेतनता जगकूँ मिलै।
तिनि पद महँ बन्दन करूँ, पत्ता जिनि बिनु नहिं हिलै॥

पद

शेष ! जग रचि पालौ संहारो।
ब्रह्मा बाबा बनिकैं बहु विधि वेद वाद विस्तारो॥१॥
भाँति भाँति के जीवनि रचिकैं भव बन्धन में डारो।
नर नारी अरु काम कल्पना कहि करि बुद्धि बिगारो॥२॥
पुनि रक्षा हित हरि बनि बहु विधि अवतारनि कूँ धारो।
साधुनि संरक्षन करिकैं खल दैत्य दानवनि मारो॥३॥
अन्त रुद्र बनि बनी बनाई सृष्टी सकल बिगारो।
बनि अनन्त सङ्कर्षण भू कूँ, सरसों सम सिर धारो॥४॥
जब जो चाहो सो करवाओ, श्वेत करो वा कारो।
पद पंकज में पतित पर्यो, प्रभु पतित उधारन तारो॥५॥

चित्र केतुकृत संकर्षण स्तोत्र

चित्रकेतुरुवाच

अजित जितः समतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता।
विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनांयआत्मदोऽतिकरुणः॥१
तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि।
विश्वसृजस्तेऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥२
परमाणुपरमहतोस्त्माद्यन्तान्तरवर्ती ,त्रयविधुरः।
आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥३
क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तनिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः।
यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिभिस्तदनन्तः ॥ ४ ॥
विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम्।
तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥५ ॥
कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि
ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥ ६॥
जितमजित तदा भवता यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम्।
निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय॥७
विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः
॥८॥ कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण।

स्वद्रोहात् तव कोपः परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥ ९
न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचरसत्वकदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥१०
न हि भगवन्नघटितमिदं त्व दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ।
यन्नामसकृच्छ्रवणात् पुल्कसकोऽपि विमुच्य ते संसारात् ॥११
अथ भगवन् वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।
सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥१२
विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।
विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥१३
नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ।
दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥१४

यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति ।
यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकन्ति ॥
भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि ।
तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥

—:o:—

हिरण्यकशिपुकृत ब्रह्म स्तुति

(५१)

कल्पान्ते काल सृष्टेन योऽन्धेन तमसा वृतम् ।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा ॥❀
आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।
रजः सत्व तमो धाम्ने पराय महते नमः ॥❀

(श्री भा० ७ स्क० ३ अ० २६,२७ श्लो०)

छप्पय

हिरनकशिपु वध बन्धु सुनत अति अधिक रिस्यायो ।
सम्बविनि समुझाइ चित्त तप माँहि लगायो ॥
ब्रह्मा तपतें तुष्ट भये सुररिपु ढिग आये ।
अज दरसन करि दैत्य विनय युत वचन सुनाये ।
तुम जगपति अज रुद्र हरि, तुम रचि पालो संहारो ।
त्रिगुन रूप द्रुम बीज जग, शक्ति प्रान मनमें भरो ॥

अपने इष्ट में ही सम्पूर्ण शक्ति सम्पूर्ण देव तथा सर्वोत्तम स्थान प्रतीत होता है। जिससे ऊँचा कोई और दिखायी दे

❀ ब्रह्माजी की स्तुति करते हुए हिरण्यकशिपु कह रहा है—"हे स्वयं प्रकाश प्रभो ! जब यह सम्पूर्ण जगत् तमोगुण से आवृत रहता है जब कुछ भी दिखायी नहीं देता है उस समय इसको काल की

वह इष्ट हो ही नहीं सकता। अपना इष्ट ही सर्व शक्तिमान् है। इसीलिये शिव शक्ति, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य जो भी जिसका इष्ट होता है वह उसकी परात्परतर भाव की स्तुति वन्दना करता है। उसे सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करता है। समस्त प्रजाओं के एक मात्र पति ब्रह्मा जी हैं अतः जो जहाँ भी बैठ कर तप करता है। ब्रह्मा जी वहाँ पहुँचकर उसे इष्ट वरदान देते हैं और उसकी मनो कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान् ने वराह रूप रखकर हिरण्यकशिपु के भाई हिरण्याक्ष को मार डाला तब हिरण्यकशिपु को बड़ा क्रोध आया उसने भगवान् विष्णु को ही अपना शत्रु समझ लिया। हिरण्याक्ष की स्त्री को समझा बुझाकर तथा अपना सब प्रबन्ध मंत्रियों को सौंपकर वह घोर वन में जाकर दुष्कर तप करने लगा। उसके तप से तीनों लोक जलने लगे। देवताओं ने इसकी सूचना ब्रह्मा जी को दी। ब्रह्मा जी हंसपर चढ़कर असुरके तपके स्थान में आये। ब्रह्मा जी ने देखा उसके शरीर पर दीमक लग गयी है। उसपर बाँस आदिके वृक्ष जम गये हैं। सम्पूर्ण शरीर को दीमकों ने चाट लिया था। ब्रह्मा जी ने अपने दिव्य कमंडलु का जल उसके ऊपर छिड़का। उन दिव्य जलके पड़ते ही वह सुवर्ण की कान्ति के समान पहिले से भी अधिक तरुण तेजस्वी हृष्ट पुष्ट तथा सुन्दर होकर उन बाँस वृक्षों के बीच से उठ खड़ा हुआ। ऊपर आकाश में

प्रेरणा से कल्प के अन्त में आप स्वयं प्रकाश परमेश्वर ही अपने तेज से प्रकाशित करते हैं और स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिगुण रूप बनाकर इसकी रचना पालन और संहार करते हैं उन त्रिगुण मय परमात्मा को प्रणाम है।"

उसने चतुरानन भगवान् ब्रह्मा जी को हंस पर चढ़े देखा। वह तो ब्रह्माजी को ही सबसे श्रेष्ठ देव मानता था। विष्णु भगवान् से तो उसका द्वेष ही था। उन्हें रण में हराने के लिये ही तो उसने घोर तपस्या की थी। अतः वह ब्रह्मा जी को ही कुछ मानकर उन्हीं की स्तुति करने लगा। सर्वज्ञ सर्वान्वर्यामी अनादि अनन्त भगवान में विशेषकर ६ बाते होती हैं। एक तो वे किसी अन्य द्वारा प्रकाशित नहीं होते। उनका अपना ही निजका स्वयं प्रकाश होता है अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। दूसरे उनके ही प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश प्राप्त होता है वे जगत के प्रकाशक हैं। जगत के एक मात्र कारण भगवान् ही होते हैं। जगत की सृष्टि स्थिति तथा प्रलय भगवान् ही करते हैं। उन्हीं का जगत् में सबसे श्रेष्ठ परम ऐश्वर्य होता है इसीसे वे परमेश्वर कहलाते हैं और संसार में वे ही सबसे महान् होते हैं सबसे अधिक महत्वशाली होने से महतो महीयान कहे जाते हैं। इन सब गुणों को हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी में ही बताता है।

ब्रह्माजी की स्तुति करते हुए हिरण्यकशिपु कह रहा है — "प्रभो! पहिले यह सम्पूर्ण जगत तमो गुण से आवृत था सर्वत्र घोर अन्धकार था। जब कल्प का अन्त हुआ सृष्टि की कल्पना का संयोग जुटने का अवसर आया तो आपकी काल रूपा शक्ति ने सृष्टि के निमित्त आपकी ही इच्छा से प्रेरणा की। आप को कहीं अन्यत्र से उपकरण जुटाने तो थे नहीं। उस तम को विदीर्ण करने के लिये कहीं अन्यत्र से प्रकाश लाना तो था नहीं। आप तो स्वयं ही प्रकाश स्वरूप हैं। अब तक अपने प्रकाश को भीतर छिपाये थे। अब काल की प्रेरणा से आपने उसे बाहर प्रकाशित कर दिया। यह तमोमय जगत् पुनः प्रकाशित हो उठा। ढका हुआ संसार प्रकट हो गया अव्यक्त जगत व्यक्त हो

गया। आपने प्रथम तमोगुण से इसका संहार किया था। रजो गुण से पुनः सृष्टि कर दी और सत्वगुण से इस सबका पालन करते हैं। आप ही इस जगत की रचना करते हैं। आपही इसका प्रतिपालन करते हैं और आपही इसका रुद्ररूप रखकर संहार भी कर डालते हैं। सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण जो सृष्टि स्थिति तथा लय के हेतु हैं वे तीनों आपके ही रूप हैं अतः हे त्रिगुण मय देव ! मैं आपके पादपद्मों में बारम्बार नमस्कार करता हूँ ।

भगवन् ! एक मात्र आप ही सम्पूर्ण जगत के आदि पुरुष हो आपसे पूर्व कोई नहीं है। इस सम्पूर्ण जगत् के बीज आप ही हो। जैसे ही बीज ही स्वयं वृक्ष बन जाता है और अन्तर्यामी रूप से वृक्ष के अणु परमाणु में व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार आप अव्यक्त ही व्यक्त रूप जगत बनकर अन्तर्यामी रूप से घट घट में समा गये हो। इतने पर भी आपका बीज रूप ज्यों का त्यों सुरक्षित है । आपकी मूर्ति शास्त्र तथा विवेक द्वारा ही जानी जा सकती है। अर्थात् ज्ञान विज्ञान ही आपकी मूर्ति है। जैसे बीज शाखा, डाली पत्ते तथा फूल फल के रूप में वृक्ष बनकर व्यक्त होता है वैसे ही आप भी प्राण रूप से कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय रूपसे तथा मन बुद्धि चित्त अहंकारादि विकारों द्वारा व्यक्त होते हैं। ये ही वृक्ष रूप आपकी शाखा प्रशाखायें हैं। ऐसे संसार महीरुह रूप आप सर्वेश्वर को बारम्बार नमस्कार है।

स्वामिन् ! आप ही चराचर विश्व को धारण किये हुए हैं। जैसे पृथिवी घट घटादि वस्तुओं को धारण किये हुए है इस प्रकार नहीं आप उन सब पदार्थों के नियामक भी हैं। आप स्थावर जंगम सभी के अन्तरात्मामें रहकर उन सबका नियमन भी करते

हैं। नियमन ही नहीं करते आप प्रजाओं के अधीश्वर भी हैं प्राणियों में जो चेतना है मुख्य प्राण हैं वह आप ही हैं। सभी चर अचर जीवों का चित्त भी आप ही हैं चेतना भी आप हैं। मन भी आप हैं इन्द्रिय भी आप हैं और इनके अधीश्वर भी आप ही हैं। महत्तत्व से जो अहंतत्व, मन, इन्द्रियाँ उनके अधिष्ठातृदेव, पंचभूत पंचतन्मात्रायें तथा समस्त वासनाएँ उत्पन्न होती हैं उन सबको भी आप ही उत्पन्न करते हो। महत्तत्व की क्या सामर्थ्य है कि वह कुछ कर सके। जब तक आप उसमें उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान न करें।

प्रभो ! समस्त यज्ञ भी आप ही हैं और उन यज्ञों के रचयिता भी आप ही हैं। जिन यज्ञों में होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता ये चार ऋत्विज होते हैं जिनमें द्रव्य मंत्र क्रिया और देवता प्रधान होते हैं जिनमें शास्त्र इज्या स्तुति और प्रायश्चित्त मुख्यतया बतायी है ऐसे यज्ञों का प्रतिपादन करते आप ही हैं। ऋक यजु. और सामवेदमयी रूप जो आपका शरीर है। उसी में से अग्नि-ष्टोमादि सात यज्ञ उत्पन्न होते हैं अतः इन यज्ञों के रचयिता भी आप ही हैं। आपके अतिरिक्त अन्य रचयिता कोई हो भी कैसे सकता है। क्योंकि आप ही अनादि हैं अनन्त हैं, अपार हैं, सर्वज्ञ हैं सर्वान्तर्यामी हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा हैं प्रेष्ठ हैं स्वरूप हैं, जीव हैं ज्ञाता हैं केशव हैं प्राण हैं शरीर हैं स्वयम् हैं और अन्तरात्मा हैं। अर्थात सब कुछ आप ही हैं।

भगवन् ! काल आपका ही स्वरूप है। सबके कलपन कर्ता आप ही हैं। आप क्षण, लव, निमेष काष्ठा, पल, घड़ी दिन, रात्रि पक्ष मास तथा वर्ष आदि अपने अवयवों द्वारा समस्त प्राणियों की आयु का बिना व्यवधान के सावधानी के साथ नित्य निरन्तर क्षय करते रहते हैं। आप कभी असावधान नहीं होते आप से

कोई कैसे भी बच नहीं सकता। सम्पूर्ण सृष्टि आप के द्वारा न हुई हो।जो आपकी स्मृति से बाहर हो इतना सब होने पर भी आप निस्संग हैं निर्विकार हैं। निरुद्वेग हैं आप में किसी प्रकार का उद्वेग नहीं किसी प्रकार की आसक्ति नहीं। क्योंकि अज्ञान तो आप में है ही नहीं मोह तो अविद्या से होता है। आप में अज्ञान का लेश नहीं जिनका जन्म होता है उनका प्रारब्ध होता है आप अजन्मा हैं कर्म रहित हैं। जो क्षुद्र होते हैं उन्हें ही इच्छा होती है। आप तो महतो मही यान हैं अतः आप सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित हैं। एक देशीय की जिज्ञासा होती है आप तो सर्व देशीय है सम्पूर्ण जीवों के अन्तरात्मा हैं इसेस आप परिपूर्ण शान्त और सदा तृप्त हैं।

हे विभो! कार्य, कारण, चर, अचर, स्थावर, जंगम, संसार के यावत पदार्थ हैं सब आपके ही रूप हैं आप से भिन्न जगत् में कोई वस्तु नहीं जितनी विद्यायें हैं जितनी कलायें हैं वे सभी आपके ही अङ्ग हैं। यह जो जगत को मोहने वाली त्रिगुण मयी माया है उससे आप सवथा पृथक हैं वह माया आप का कुछ बिगाड़ नहीं कर सकती उससे आप सर्वथा अतीत हैं। आप स्वयं साक्षात पर ब्रह्म हैं. परावरेश हैं यह स्वर्ण मय ब्रह्माण्ड आपके ही द्वारा उत्पन्न हुआ है इसीसे आपको हिरण्यगर्भ कहते हैं। आप स्वयं सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। यह विश्व ब्रह्माण्ड ही आप का स्थूल शरीर है यही आपका व्यक्त देह है। इसस्थूल शरीर से आप इन्द्रिय प्राण और मन के विषयों का भोग करते हैं। उस पर यह शंका हो सकती है कि तब तो आप भी कर्मबद्ध जीव ही हुए हैं। जैसे प्रारब्ध कर्मों के अधीन होकर अज्ञान से आवृत जी स्वभाव वश विषयों में प्रवृत्त होता है और नाना योनियों में जन्म लेकर इन्द्रिय जन्य विषयों का उपभोग करता है

फिर आपमें और साधारण जीवों में अन्तर ही क्या रहा ! नहीं प्रभो ! आप तो सबके नियामक हैं। आप यह सब अपने परमात्म तत्त्व में अवस्थित ही होकर करते हैं करते हुए भी आप बद्ध नहीं होते। कर्म सम्बन्धी बन्धन आप से दूर रहते हैं। आप कर्ता होते हुए भी निर्लेप हैं आप व्यक्त होते हुए भी वास्तव में अव्यक्त ही हैं। आप कल्प के आदि में सृष्टि आरंभ करते हुए से प्रतीत होते हैं किन्तु स्वयं आपका कोई आदि नहीं आप पुराण पुरुषोत्तम नित्य सनातन हैं। सृष्टि के साधन स्वरूप अनेक तत्व ऐसे लगते हैं कि ये आपकी उपाधि हैं किन्तु यथार्थ में तो आप सभी उपाधियों से रहित निरुपाधिक हैं। आप अपने शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप में सर्वदा अवस्थित रहते हैं। ऐसे आप विरुद्ध धर्माश्रय प्रभु के पाद पद्मों में प्रणाम है।

हे देव ! आपने अपने अव्यक्त अनन्त रूप से ही सम्पूर्ण जगत को आच्छादित कर रखा है। संपूर्ण संसार को ढक रखा है। कोई स्थान क्षुद्र से क्षुद्र छिद्र भी ऐसा नहीं है जहाँ पर आप व्याप्त न हों आपका अस्तित्व न हो। आप चेतन शक्ति से भी युक्त हैं और अचेतन से भी चेतन, अचेतन का भेद भाव तो हमने कर रखा है आप तो सम भाव से सब में एक रस व्याप्त हैं। जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है। ऐसे सर्वाश्रय सर्वव्यापक सर्वात्मा सर्वेश्वर को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हिरण्यकशिपु ने इस प्रकार ब्रह्मा जी की ब्रह्म भाव से लम्बी चौड़ी स्तुति करके अंत में शरीर को अजर अमर बनाने के वर माँगे। असुर का अर्थ ही यह है कि जो प्राणों में रमण करे अर्थात देह को ही सब कुछ समझ उसके ही पालन पोषण और स्थायी बनाने में प्रयत्नशील बना रहे। इस प्रकार मैंने आपसे यह हिरण्यकशिपु कृत ब्रह्म स्तुति कही। अब जैसे प्रह्लादजी ने हिरण्यकशिपु के वध के

अनन्तर नृसिंह भगवान् के परम उपदेश प्रद दिव्य स्तुति की है उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। आप उस दिव्यातिदिव्य स्तुति को समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करें।"

छप्पय

तुमसब चरअरु अचर जगतके हो प्रति पालक।
तुमही मख हवि बेदभेद होता धृत याजक॥
तुमसबके हो काल कालके कलपन करता।
तुमही विद्या कला जगतके भरता हरता॥
तुम करता कारन करम, निरूपाधिक अव्यक्त विभु।
बार बार वन्दन करूँ, जो परमारथ परम प्रभु॥

पद

प्रजापति जगपति विश्व विहारी।
लीला अलख अगोचर अचरज कहत शारदाहारी॥१॥
आदि पुरुष जगबीज विनोदी, अजर अमर वपुधारी।
सबकूँ करो हरो पालो प्रभु, सब जीवनि हितकारी॥२॥
हो चित अचिंत शक्ति तैं संयुत, अज अव्यक्त अधारी।
चरन कमल प्रभु पुनि पुनि बन्दौं, लीन्हीं शरन तिहारी॥३॥

हिरण्यकशिपु कृत नृसिंहस्तुति

हिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेनतमसाऽऽवृतम् ।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा ॥१॥
आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।
रजःसत्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥२॥
नम आद्याय वीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।
प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥३॥
त्वमीशिषे जगतस्थुषश्च,
प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।
चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां,
पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥४॥
त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा,
त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ।
त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादिः,
अनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥५॥
त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानाम्,
आयुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महान्,

त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥६॥
त्वत्तः परं नापरमप्यनेजत्,
एजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।
विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा,
हिरण्यगर्भोऽसि बृहत् त्रिपृष्ठः ॥७॥
व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं,
येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्ये,
अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥८॥
अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ।
चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥९॥

श्रीप्रहलादकृत नृसिंह स्तुति (१)

(५२)

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथसिद्धाः
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिपुः
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥❀

(श्री भा० ७ स्क० ९ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

हिरनकशिपु वध कर्यो बिराजे सिंहासन हरि।
ब्रह्मादिक इटि गये नमन सब दूरहिँ तैं करि॥
पकरे पग प्रहलाद दीठि प्रभु चरनान दीन्हीं।
स्वर गद्गद् तनु पुलक प्रेम युत इस्तुति कीन्हीं॥
निज गुनगन तें सुर सकल, करि न सके गुन गान जिनि।
अधम असुर अति अज्ञ अघ, बरनन यश कस करहुँ तिनि॥

सद्गुण अच्छे भाग्यशालियों को ही प्राप्त होते हैं संसार में

❀ नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे हरे ! ब्रह्मादिक जितने देवता हैं, जितने ऋषि मुनि तथा सिद्धगण हैं, जिनकी बुद्धि सदा सत्व में ही स्थित रहती है, वे सभी अपने वचनों के प्रवाह द्वारा तथा विविध गुणों से भी आज तक आपको आराधना करके संतुष्ट नहीं कर सके, तो फिर जिसका जन्म एक उग्रजाति असुर कुल में हुआ है, ऐसा मैं भला आपको सन्तुष्ट कैसे कर सकता हूँ ।"

मनुष्य सद्गुणों के ही द्वारा कीर्ति लाभ करके अन्त में स्वर्ग के अधिकारी बन जाते हैं। सद्गुणों से बढ़कर जगत् में कोई वस्तु नहीं। किन्तु केवल सद्गुणों से ही आप चाहें कि भगवान् को प्राप्त करलें तो असम्भव है, भगवान् तो भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं माधव तो भक्ति प्रिय ही हैं, भीतर की भावना शुद्ध हो सच्ची लगन हो तो भगवान् बाहरी उपकरणों की ओर ध्यान नहीं देते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् ने नृसिंहावतार लेकर असुरराज हिरण्यकशिपु को मार दिया। भगवान् ने अत्यन्त भयंकर रोषयुक्त श्रीमुख को देखकर ब्रह्मादि सभी देवगण भयभीत हो गये वे दूर ही से दंडवत् प्रणाम करने लगे, किन्तु जिन भक्तराज प्रह्लाद के लिये भगवान् ने जो यह अत्यद्भुत अवतार धारण किया, वे दूर से भला दंडवत कैसे कर सकते हैं, जो स्वयं भयहारी हैं जिन्होंने मेरा इह लोक का ही भय हरण नहीं किया किन्तु जिन्होंने उभयलोक के भयों से मुझे मुक्त कर दिया, उन भवभयहारी भगवान् से भला भय का क्या काम? वे भगवान् के समीप चले गये, सर्वप्रथम उन्होंने दंड के सदृश भूमि में लोटकर भगवान् को साष्टांग प्रणाम किया। छोटे से नन्हें से अत्यंत सुकुमार राजकुमार को अपने सम्मुख भूमि पर पड़ा देखकर भगवान् नृसिंह का हृदय वात्सल्य प्रेम से भर आया। उन्हें स्मरण हो उठा इस अबोध शिशु को मेरे कारण इसके असुर-पिता ने कितने भारी भारी क्लेश पहुँचाये। दया से द्रवित होकर कृपा से परिपूर्ण प्रभु ने बालक को स्वयं बड़े स्नेह से उठाया। उसके शरीर की धूलि पोंछी और अपना अभयप्रद वरदहस्त उसके मस्तक पर रख दिया। भगवान् के चिन्मय परमपावन कर कमल के स्पर्श से प्रह्लादजी के समस्त अशुभ कर्म नष्ट हो

उनके जन्म जन्मान्तरों के समस्त पाप ताप संताप नष्ट हो गये। उन्हें भगवान के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो गया। भगवत् साक्षात्कार होने से उनके हृदय में दिव्य ज्ञान का स्रोत परिस्फुटित हो गया अत्यन्त प्रेम के कारण सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा दोनों बड़े बड़े नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित होने से अत्यन्त धीर गम्भीर प्राणी से वे प्रभु की स्तुति करते हुए कहने लगे।

प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए कहा—"प्रभो! मैं आपको सन्तुष्ट करने के लिये आपकी स्तुति करना चाहता हूँ. आपकी आराधना करना चाहता हूँ, किन्तु क्या मैं आपकी स्तुति करने का अधिकारी हूँ, क्या मैं आपकी स्तुति कर सकूँगा, क्या आप मुझपर सन्तुष्ट हो सकेंगे ?

आप महान् से भी महान् हैं, संसार में आपसे महान् कोई है ही नहीं। जैसे देवता हो उसकी पूजा भी वैसी ही होनी चाहिये। महान की स्तुति भी महान् हो और करने वाला भी महान् ही हो, आप महतोऽहीयान् सन्तुष्ट कर सकते हैं।

इस संसार में सबसे बड़े तो ब्रह्माजी हैं. ब्रह्माजी से बड़ा कोई नहीं हैं। इन्द्रादि देवगण भी बड़े हैं, क्योंकि वे सदा सत्वगुण प्रधान रहते हैं उनकी बुद्धि सत्वगुण में स्थित रहती है। जिन्होंने ज्ञान विज्ञान द्वारा आपका साक्षात्कार कर लिया है, ऐसे ऋषि मुनि सिद्धगण भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे नित्य निरन्तर तपादि में निरत रहते हैं. किन्तु ब्रह्मादि देवगण, ऋषि मुनि तथा सिद्धगण अनेक सुन्दर सुन्दर उक्तियों द्वारा सुललित वाक्यों के अजस्र प्रवाह द्वारा, बड़ी बड़ी युक्तियों और तर्कों द्वारा, बड़े बड़े प्रशंसनीय गुणों द्वारा आपकी स्तुति करते रहते हैं, किन्तु वे सब भी आपको अपनी अद्वितीय आराधना के द्वारा सर्वात्मभाव से

सन्तुष्ट नहीं कर सके, तो मैं तो तमोगुण प्रधान, असुरजाति में उत्पन्न, वेदशास्त्रों के रहस्य से अपरिचित अज्ञ, अधम बालक भला अपने टूटे फूटे शब्दों द्वारा आपको कैसे सन्तुष्ट कर सकता हूँ, कहाँ ब्रह्मादिदेव और कहाँ मेरा जैसा अधम। कहाँ उनकी वेदशास्त्र सम्मत धारा प्रवाह वाणी कहाँ अज्ञानता से युक्त मेरी अशुद्ध तोतली बातें। आप इतने महान् देव क्या मेरी स्तुति सुनेंगे ? क्या मेरी ओर कृपाभरी दृष्टि से देखेंगे।

प्रभो ! आपकी महत्ता और अपनी क्षुद्रता को देखकर मुझे साहस नहीं होता, कि आप मेरी स्तुति से प्रसन्न हो जायगे, किन्तु इस निराशा में भी मुझे आशा की एक ज्योति स्पष्ट दिखायी देती है, वह यह कि जब ग्राह ने गजराज का पैर पकड़ लिया था तब उसने सूँड़ में एक कमल लेकर केवल आपको भक्तिभाव से एक बार ही पुकारा था आपने उसकी पुकार सुनो और तुरन्त दौड़े आये उसपर आप प्रसन्न हो गये ? गजराज तो कोई बड़ा व्यक्ति नहीं था। बड़प्पन की उसमें कोई बात नहीं। बारह बातों से व्यक्ति बड़े माने जाते हैं। संसार में धन से आदमी बड़ा गिना जाता है, गजराज के पास धन नहीं था वह तो वनों में से तृण चुगकर निर्वाह करता है। कुलीनता से भी बड़प्पन माना जाता है, वह पशु था किसी ब्राह्मण कुल में भी उसका जन्म नहीं हुआ था। रूप से भी आदमी को अहंकार होता है, कि मैं कितना रूपवान् हूँ, सो, हाथी का कोई रूप भी सुन्दर नहीं। काला काला मोटा चर्म इतने भारी शरीर में छोटी सी आँखें दाँत निकले हुए भूमि तक लटकती हुई नाक या सूँड़। तपसे भी व्यक्ति बड़े माने जाते हैं, हाथी ने कोई तप भी नहीं किया। न उसने पंच प्रतापी न कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत ही किये पशु योनि में ऐसा संभव ही नहीं था। विद्या से भी मनुष्यों की महत्ता है गजराज ने वेदशास्त्रों का अध्ययन भी नहीं किया था। ओज,

तेज, प्रभाव ये भी बड़प्पन के चिन्ह हैं, किन्तु गज में ये भी नहीं थे। बल से भी व्यक्ति बड़ा माना जाता है, यद्यपि गजराज में बल तो अपार था, किन्तु ग्राह के आगे वह जलमें अपना बल भी खो चुका था निर्बल बन गया था। पौरुष, बुद्धि और योग से भी बड़े माने जाते हैं, गजराज में इन बारहों में से एक भी नहीं था। उसके पास एक ही वस्तु थी भक्ति। भक्तिभाव से जहाँ आर्त होकर आप भक्तवत्सल को पुकारा वहीं आप तुरन्त उपस्थित हो गये। इससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि आपको ये उत्तम बारह गुण ही वश में करने में समर्थ नहीं हो सकते आपकी प्रसन्नता के लिये तो भक्ति का होना परमावश्यक है, वे बारह गुण भी हों और साथ ही भक्ति हो, तब तो अहा, कहना ही क्या है, सोने में सुगन्ध हो जाय, किन्तु ये गुण हों और भक्ति न हो तो सब व्यर्थ हैं इसके विपरीत इन गुणों में से एक भी न हो और केवल भक्ति ही भक्ति हो भी आप प्रसन्न हो जाते हैं।

प्रभो! भक्ति के सम्बन्ध में आपके यहाँ ब्राह्मण और चांडाल सभी समान हैं, इस विषय में आपके यहाँ भेदभाव नहीं। कोई ब्राह्मण है, वह धनी भी है, कुलीन भी है, प्रभावशाली, बलशाली, रूपवान्, विद्वान्, तपस्वी भी है, साथ ही पुरुषार्थ, ओजस्वी, तेजस्वी, बुद्धिमान तथा योगनिष्ठ भी है इन बारह गुणों से युक्त है अथवा ब्राह्मण के जो धर्म, सत्य, दम, तप, अमात्सर्य, ह्री, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, और वेदाध्ययन ये बारह व्रत हैं, इन बारहों से सम्पन्न भी है अथवा श्रम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, विरक्तता, ज्ञान, विज्ञान, सन्तोष, सत्य और आस्तिक्य ये जो बारह श्रेष्ठ गुण बताये हैं इनसे भी युक्त क्यों न हो, किन्तु इतने गुणों से युक्त होने पर भी यदि वह आपका भक्त नहीं है, ब्रह्माजी को भी उत्पन्न करने वाले आप कमलनाभ

के चरणकमलों से विमुख है, उससे तो मैं उस श्वपच को श्रेष्ठ समझता हूँ, जिसमें उपर्युक्त बारह गुणों में से तो एक भी गुण है नहीं, किन्तु निर्गुण होने पर भी उसने अपने मनको, अपनी समस्त इन्द्रियों को, अपनी वाणी को अपने समस्त कर्मों को तथा उसपर जो भी कुछ धन है उसे और अपने प्राणों को आपको अर्पण कर दिया अपना सर्वस्व आपमें ही लगा दिया है। उस चांडाल की बराबरी भक्तिहीन वेदविद् विप्र कैसे कर सकता है। इससे भी सिद्ध हुआ कि आपको केवल वर्ण सम्बन्धी श्रेष्ठता ही स्वीकार नहीं आपको तो भक्तिप्रिय वह चाहे चांडाल में हो विप्र में हो। आप अहंकारी से दूर रहते हैं। जिसे अहंकार नहीं गुणहीन है, जाति का भी अधम है, किन्तु उसने अपना सर्वस्व आप सर्वेश्वर को सर्वात्मभाव से समर्पित कर दिया है तो वह स्वयं भी पवित्र हो जायगा और अपने सम्पूर्णकुल को भी पावन बना देगा। उसके विपरीत जो उच्चजाति का है सर्वगुण सम्पन्न है, किन्तु उसे अपने बड़प्पन का भारी गर्व है, अपनी उत्तमता का अत्यधिक अभिमान है, तो ऐसा व्यक्ति अपने आपको भी पावन नहीं बना सकता, आपके पादपद्मों के पास तक नहीं पहुँच सकता। क्योंकि उसने अहंकार की भारी गठरी अपने सिर पर जो लाद रखी है। आपको अहंकार से चिढ़ है भक्ति से प्यार अनुराग है इसीलिये सर्वस्व समर्पण करने वाले अपने भक्तों के गुणों को तथा उनके वर्णों को आप नहीं देखते।

अच्छा, भगवन्! यह कहा जाय, कि आप प्रशंसा प्रिय हैं, जो आपकी पूजा प्रतिष्ठा करता है, अपना सर्वस्व आपको अर्पण कर देता है, आपकी भूरि भूरि प्रशंसा करता है, सब कुछ आपको दे देता है, तो आप उस दान से प्रसन्न हो जाते हैं, सो भी बात नहीं। आपको भला कोई दे ही क्या सकता है। गंगाजी

को कोई पानी पिलाना चाहे तो कहाँ से पिलायेगा। गंगाजी तो स्वयं ही सबको अमृतोपम पय पिलाती रहती है, आप जगत् को देने वाले हैं, सबसे बड़े दाता हैं, आपको कोई दे ही क्या सकता है। आपको पूजा प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता तो उसे हो. जिसको किसी वस्तु का अभाव हो, आपतो स्वयं ही परिपूर्ण हैं, आप्तकाम हैं निज लाभ परिपूर्ण हैं। आप इन धूप, दीप नैवेद्य, पान सुपारी आदि क्षुद्र वस्तुओं से क्षुद्र पुरुषों द्वारा दी हुई सामग्रियों से भला क्या प्रसन्न होंगे वे आपको सन्तुष्ट करने में समर्थ कैसे हो सकेंगे फिर भी आप करुणावश केवल दया के वशीभूत अपने अनन्याश्रितों द्वारा की हुई पूजा को उनकी प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण कर लेते हैं। फिर जो प्रभो! आपकी पूजा करता है, वह मानों अपनी ही पूजा करता है। कोई मनुष्य किसी उत्सव में किसी बड़े व्यक्ति को बुलाकर उसका सम्मान करता है, उसकी शोभायात्रा निकालता है, तो इससे तो सम्मान करने वाले की ही प्रतिष्टा मिलती है, उसे मान सम्मान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है, कोई अपने पिता को सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत करता है, तो उसे गौरव स्वतः ही प्राप्त हो जाता है, कोई अपने गुरु की आज्ञा पालन करता है, तो उसको लोग सुशील गुरु भक्त परायण कहकर प्रशंसा करते हैं। कोई अपने मुख का शृंगार करके दर्पण में मुख देखता है, तो दर्पण के प्रतिबिम्ब का उसे पृथक् शृंगार नहीं करना पड़ता। जैसा जैसा शृंगार वह मुखपर करेगा वैसा ही वैसा दर्पण प्रतिबिम्ब को अपने आप ही प्राप्त होता जायगा। इसी प्रकार भक्त आपके प्रति जो जो भी मान सम्मान प्रदर्शित करता है, वह उसे स्वतः प्राप्त हो जाता है।

स्वामिन्! यद्यपि मैं तमोगुण प्रधान असुरों में उत्पन्न हुआ हूँ, मैं अधम हूँ, मुझमें विद्या बुद्धि नहीं, फिर भी, मैं आपके गुणों

के गान का दुस्साहस करता हूँ, अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी महिमा वर्णन को उद्यत हुआ हूँ। बिना किसी शंका के आपकी स्तुति करने में प्रवृत्त होता हूँ, वह वर्णन कुछ आपके लिये नहीं, आप अपार महिमा वाले की महिमा का कोई बखान कर भी क्या सकता है, जैसे कोई अरब खरबपति है, उसे कोई लाकर कुछ ताम्र खण्ड दे दे, तो उसे उन्हें पाने में क्या प्रसन्नता होगी, हाँ देने वाले का सन्तोष भले ही हो जाय, कि मैंने उन्हें कुछ न कुछ अर्पण किया। इसी प्रकार आप गुणों के आकर हैं, यह अल्पमति वाला मानव आपको गुणगान करके ही सन्तुष्ट कैसे कर सकता है, फिर भी सदा से सभी लोग आपका गुणगान करते ही हैं, कारण कि आपके गुणगान करने से अविद्या का नाश होता है। इसीलिये अपने को पावन बनाने के निमित्त अपनी अविद्या की ग्रन्थि को खोलने के लिये समस्त संशयों के नाश के निमित्त अपने कर्म बन्धनों को काटने के हेतु तथा संसार चक्र से पृथक् होने के लिये आपकी स्तुति करने को प्रवृत्त हुआ हूँ। आशा है मुझे आप स्तुति करने की शक्ति प्रदान करें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार प्रह्लादजी ने आरम्भ में अपनी विनय दिखाकर स्तुति की भूमिका बाँधकर फिर दिव्य स्तुति की। अब आगे जैसे दिव्य स्तुति करेंगे उसे मैं अगले अध्याय में कहूँगा।"

छप्पय

भगवन्! धन, बल, ओज, तेज, तप विद्या पौरुष।
धी, कुल, योग, प्रभाव, रूप, गुन ये वर द्वादश॥
भक्ति बिना ये नहीं आपुकूँ नाथ! रिझावें।
भक्तिहीन वर विप्र पाइ गुन अति इतरावें॥

पशु गज भक्ति प्रभावतैं, नाम लिये भव तरि गयो।
इस्तुति करि वे असुर है, साहस प्रभु तातैं भयो॥

पद

नरहरि ! भक्ति तुमहिँ अति प्यारी।
भक्ति बिना गुन यों सब सूने, ज्यों पट बिनु वर नारी ॥१॥
विप्र कुलीन, धनी, तप बलयुत, रूप, तेज व्रतधारी।
विद्या, विनय, योग, धी गुन सब, रिझवैं नहिँ असुरारी ॥२॥
गजकी विनती सुनत ई दौरे, गनिका कुलटा तारो।
अभिमानी मँझधार डुबाये, प्रभु भक्तनि भयहारी ॥३॥
हूँ अति नीच विनय विद्या नहिँ, इस्तुति करूँ तिहारी।
भगतवछल प्रभु पार लगाओ, चरनकमल बलिहारी ॥४॥

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (२)

(५३)

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्व धाम्नो-
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥*॥

(श्री भा० ७ स्क० ६ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

असुर अति करयो द्रोह कोह अब नरहरि त्यागे ।
सुमिर जे तव रूप सकल भय तिनके भागे ॥
भये सुखी सुर सकल असुरवर मारि गिरायो ।
देखि विकट विकराल रूप भय सुर हिय छायो
वदन भयंकर भ्रुकुटि रिस , दाढ़ उग्र सग आँत गल ।
थिथिरयो तनु रिपु रक्त तैं , भय न मोइ तव कृपा बल ॥

प्रियता प्रेम में होती है, वस्तुओं में नहीं । अपना प्यारा कैसा
[illegible]रो हो, कैसे भी उस की भयंकर मूर्ति हो, सब से सुन्दर लगेगा

---

*प्रह्लाद जी भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—हे [स्]वामिन् ! ये जो ब्रह्मादि देव हैं ये सब के सब आप के आज्ञानुवर्ती [है]। हम असुरों की भाँति आप से द्वेष भाव नहीं रखते । और हे प्रभो ! आप [वि]विध प्रकार के जो ये रुचिर-मनोज्ञ-अवतार धारण करते हैं भाँति [भाँ]ति की लीलायें करते हैं ये भी, विश्व के कल्याण के निमित्त तथा [उ]द्भव और आत्मसुख के लिये ही करते हैं ।

जिसमें अपनापन नहीं, प्रेम नहीं. निजत्व नहीं, वह कितना भी सुन्दर क्यों नहीं, वह अपनी ओर अधिक आकर्षित न कर सके गा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुये प्रह्लाद जी कह रहे हैं—"प्रभो! ये ब्रह्मादि देव आप के इस अति विकराल महा भयंकर भयावह रूप के कारण भयभीत हो रहे हैं ये आप के सम्मुख आने से भी हिचकिचाते हैं, दूर से ही दंडवत प्रणाम करके हट जाते हैं। इन सब ने आप के समीप मुझे भेजा है। स्वामिन्! देवताओं को भयभीत करना तो आप को अभीष्ट नहीं है। आपने तो असुर को मारने के लिये ब्रह्मा जी के वरों को सत्य करने के लिये ऐसा विचित्र वेष बनाया था। जिस कार्य के लिये रूप बनाया था, वह कार्य समाप्त हो गया। असुर राज मारा गया, फिर आप अपनी भ्रुकुटियों को क्यों चढ़ाये हुये हैं, क्रोध की मुद्रा क्यों धारण किये हुये हैं। देवता तो आप के अनुयायी हैं, आज्ञानुवर्ती हैं, आप के अनुशासन में चलने वाले हैं, ये हम असुरों की भाँति आप से ईर्ष्या तो नहीं करते हैं हम लोगों की भाँति ये आप को अपना अरि तो नहीं मानते, फिर इनकी ओर आप कृपा की कोर क्यों नहीं करते। इन्हें अभयदान क्यों नहीं देते? यह सत्य है, आप का कोई भी रूप भयानक नहीं, सभी रूप सुन्दर हैं कोई भी लीला वीभत्स नहीं सभी मनोहर हैं, हृदय को हरन वाली हैं, भक्तों को सुख देने वाली हैं, फिर भी प्रभो! आपने जो यह उग्र रूप रखा है उसका उप संहार कीजिये। क्रोधी को परास्त करने के निमित्त कुछ क्रोध की सी मुद्रा प्रदर्शित करनी ही होती है कार्य समाप्त होने पर उसकी समाप्ति हो जाती है। साधु स्वभाव के लोग स्वयं किसी क्रूर का भी अपने हाथों वध नहीं करते, किन्तु कोई दूसरों को दुःख भय तथा उद्वेग पहुँचाने वाला सर्प बिच्छू के

समान कोई हिंसक जन्तु है, और उसे कोई अन्य मार देता है, तो साधु पुरुष उस का अनुमोदन ही करते हैं, दूसरों को दुख देने वाले के निधन पर आन्तरिक प्रसन्नता ही प्रकट करते हैं। सभी लोग असुराधिप मेरे पिता के कारण दुखी थे, भयभीत थे, अब वे आप के द्वारा उनके मारे जाने पर प्रफुल्लित हो रहे हैं, अब वे आनन्द मना रहे हैं अब वे सब भी, आप की आनन्दमयी मुद्रा का अवलोकन करने को आकुल हो रहे हैं, प्रभो! आप इन्हें अपने सौम्य रूपका दर्शन कराइये। इनके भय को छुड़ाइये।

स्वामिन्! आप यह न समझें कि इन दैत्यदानव और देवताओं के सदृश मैं भी आप के इस उग्र रूप से भयभीत हो रहा हूँ। मुझे तो इस रूप से तनिक भी भय नहीं है। हे अजित! पर्वत की कंदरा के सदृश जो यह आपका अंध कूप के सदृश भयंकर मुख मुझे खिले हुये सहस्र दल कमल के सदृश प्रतीत होता है। लप लप करती हुई आप की बड़ी भारी बाहर निकली हुई जिह्वा मुझे परम सुन्दर दिखाई दे रही है। ये सूर्य सदृश बड़ी बड़ी प्रकाशवान भयंकर आखें मुझे शीतल अमृत की वर्षा करती हुई चन्द्रमा की चाँदनी के सदृश प्रतीत हो रही हैं। वक्र हुई भ्रुकुटियों का आरोप अर्थात् वेग मुझे माता के प्रेम कोप के सदृश प्रतीत होता है। बड़ी बड़ा खूँटा सी भयंकर दांढ़े जिनमें रक्त लगा हुआ है मुझे दाड़िम के रक्ताभ दानों के सदृश दिखाई दे रही हैं। असुरराज के पेट से निकली आँतो की वीभत्स माला उसे रक्त कमल की माला सी प्रतीत हो रही है। शरीर पर ग्रीवा पर तथा बड़े बड़े बालों पर रक्तात्क सटा कलाप है अर्थात् रुधिर की केसर सी प्रतीत हो रही है, वह मुझे ऐसा लग रहा है कि आप के मोती के सदृश स्वच्छ श्वेत धवल यश चादर के बीच बीच में लाल जड़ दिये हों। आप के जो सीधे खड़े हुए

शंकु सदृश गोल दोनों कान ऐसे लग रहे हैं मानों आप बड़े बड़े दो कमल पुष्पों को सिकोड़ कर लगाये हुए हैं। आप का यह जो दिग्गजों को भी भयभीत करने वाला भयंकर सिंह नाद है, वह ऐसा लगता है कोई निपाद स्वरमें मधुर गान कर रहा है। आपके ये शत्रु-उदर भेदन कारी शूल के सदृश बड़े बड़े नख मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अपनी उँगलियों में क्रीड़ा के निमित्त कमल नाल खोंस रखीं हों। देखने में तो ये सब वस्तुएँ आप का ऐसा भयकारी स्वरूप परम भयंकर प्रतीत होता है, किन्तु मुझे तो बड़ा ही प्यारा प्यारा लगता है, मुझे तो इससे तनिक भी भय नहीं। हाँ प्रभो ! आप के इस रूप से भले ही भय न हो, फिर भी मैं एक बात से भयभीत बना ही हुआ हूँ। हे कृपणवत्सल ! हे दीनबन्धो ! हे अशरण शरण ! मैं इस अति उग्र दुःसह संसार चक्र से भयभीत हूँ। जन्म मरण के क्लेश से क्लेशित हूँ। बार बार जन्मना और बार बार मरना इस से मैं आकुल हो उठा हुँ। ये कर्म रूप पिशाच ये भयंकर वधिक मुझे जकड़े हुए हैं। सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों बहेलियों ने मुझे बाँध कर भवाटवी रूप भयङ्कर वन में भोग रूपो हिंसक पशुओं के बीच में पटक दिया है। ये केवल संसृति का अन्त नहीं करते और सभी दुर्गति करते रहते हैं। नाना रूपों में परिवर्तित करते हैं, नाना नाच नचाते हैं, भाँति भाँति के भय दिखाते हैं, बारबार डराते धमकाते हैं। इस भवाटवी में पड़ा हुआ मैं भय के कारण थर थर काँप रहा हूँ। प्रभो ! इस भवाटवी से निकालकर मुझे अपने सुखदायी, अभयप्रद, आनन्दाश्रय, मंगलदायी, चरणकमलों की शीतल छाया में बुला लीजिये। उन मोक्षप्रद पादपद्मों के निकट मुझे आश्रय दीजिये। हे दीनबन्धो ! हे करुणावरुणालय ! इन हिंसक जन्तुओं से तथा वीभत्सवधिकों से बचाइये। प्रभो !

इस भवाटवी में मैं अत्यन्त ही दुखी हूँ, अत्यधिक क्लेश उठा रहा हूँ।

दयालो ! न जाने मैं कहाँ कहाँ भटकता फिरा। किस किस योनि में गया। क्या क्या वेप बनाये, कितने कितने वस्तुओं को अपनी कहकर उनका संग्रह किया। सुख पाने की इच्छा से वस्तुओं को जोड़ता ही गया इकट्ठा ही करता गया, किन्तु सुख नहीं मिला। उस संग्रह ने भी दुःख ही दिया परिग्रह का परिणाम भी क्लेशकारक ही सिद्ध हुआ। अप्रिय के संयोग से तथा प्रिय के वियोग से जिस शरीर में भी गया वहीं तड़पता ही रहा, व्याकुल ही बना रहा, असन्तुष्ट ही रहा, शोकानल से सन्तप्त होकर दुखी ही बना रहा। उस दुःख को मेंटने के लिये ये जो उपाय किये वे भी दुखदायी ही सिद्ध हुए। कीचड़ को धोने के लिये कीचड़ लगायी उससे और अधिक कीचड़ लग गयी। मेरा तो श्रीगणेश ही विपरीत हुआ। मैंने ये जो देह गेह, स्वजन बन्धु-बान्धव अनात्म पदार्थ हैं, उनमे आत्मबुद्धि कर ली। असत्य को सत्य मानकर चलने से सोधा मार्ग कहाँ मिलेगा। फिर तो भटकना ही पड़ेगा। सो, हे मेरे जीवन सर्वस्व ! बहुत समय से मैं इस भवाटवी में भटक रहा हूँ, चिरकाल से व्यर्थ चक्कर काट रहा हूँ। नाथ ! अब तो मेरा भटकना बन्द कर दीजिये, मुझे अपना अनुचर किंकर, सेवक तथा दास बना लीजिये, मुझे दास्यभाव का पाठ पढ़ा लीजिये।

आप पूछेंगे, दास बनने में क्या रक्खा है, दास्यभाव से क्या होगा ? तुम स्वामी क्यों नहीं बनते। सो, हे मेरे स्वामिन् ! स्वामी तो सबके एकमात्र तुम ही हो। सबके सच्चे सुहृद्, स्वामी, सखा तथा सर्वस्व आप ही हो, सबके परम देवता आप ही परमेश्वर हो। जब मैं आपकादास हो जाऊँगा,तो मुझेआपके चरण

निकट निवास करने का सुयोग प्राप्त हो जायगा। वहाँ और भी तो आपके दास निवास करते हैं। उन श्रेष्ठतम प्राचीन दासों का उन आपके अनन्य आश्रितों का, आपके युगल कमल चरणों में निवास करनेवाले परमज्ञानी भगवत्‌भक्तों का मुझे सत्संग प्राप्त होगा, उनके सहवास का सुअवसर पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा, मेरे रागादिगुणों के बन्धन ढीले हो जायँगे। मैं राग मोहादि से विमुक्त बन जाऊँगा, फिर मुझे एक ही कार्य रह जायगा, सभी चिन्तायें तो राग द्वेष, लोभ मोहादि के कारण ही होती हैं उनसे मैं सर्वथा विमुक्त हो जाऊँगा, तब तो जो मेरे पूर्व के दास करते आये हैं उसी कार्य को करूँगा। आपकी लीला कथाओं का श्रवण तथा गान करूँगा। जिन कथाओं का ब्रह्मादि देवों ने अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से गान किया है, उन्हीं को गाकर मैं बात की बात में सुगमता सरलता के साथ इस संसार सागर को पार कर जाऊँगा।

हे सर्वाधार! जिसकी आप रक्षा करते हैं, उसकी तो रक्षा होती है, फिर चाहें आप किसी को भी निमित्त बनाकर रक्षा करें किन्तु आप यदि उपेक्षा कर दें, तो लोक में सन्तप्त पुरुषों की जो दुःख निवृत्ति के उपाय बताये हैं, वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। जैसे बालकों के रक्षक पालक माता पिता बताये हैं, वे ही शिशु के पालन पोषण कर्ता हैं, किन्तु यदि आप उसकी रक्षा करना नहीं चाहते, तो लाख माता पिता पूरे प्रयत्नों से रक्षा करें तो भी आपके द्वारा उपेक्षित बालक की रक्षा नहीं हो सकती। रोगों का उपाय औषधि है, किन्तु आप जिस रोग को अच्छा नहीं करना चाहते, उसके लिये सुन्दर से सुन्दर औषधियाँ, समुद्र से निकला साक्षात् अमृत भी व्यर्थ हो जाता है, कैसी भी औषधि उसे अच्छा नहीं कर सकती। समुद्र में डूबते हुए नौका बचाने में समर्थ समझी जाती है, जिसे आप ही उबारना न चाहें उसके

लिये चाहें जितनी नौकायें क्यों न आ जायँ, वह नौकाओं के रहते हुए भी डूब जायगा। देखा गया है समस्त अनुकूल साधनों के रहते हुए भी फल विपरीत हुआ है, इससे यही सिद्ध हुआ कि सबके एकमात्र रक्षक आप ही हैं आप जिसे तारना चाहेंगे वह तरेगा, जिसे डुबाना चाहेंगे वह डूबेगा। सो, हे प्रभो ! मैं एकमात्र आपकी ही शरण में आया हूँ।

हे जगत् पिता ! संसार में जितने कर्ता हुए हैं, वे चाहे प्राचीन हों, या नवीन, पर हों या अपर उनके द्वारा जो भी कुछ हुआ है या होगा, वह आपका ही स्वरूप है। जैसे ब्रह्माजी ने काल की प्रेरणा से, या पिता माता ने पुत्रेष्णा या कामेष्णा से प्रेरित होकर जो उत्पन्न किया वह आपका ही स्वरूप है, ब्रह्माजी ने प्रकृति में गर्भका आधान किया पिता ने पत्नी में। वह सब भी आपकी ही प्रेरणा से हुआ ब्रह्माजी ने अपने कल्प के आदि में पिता ने ऋतुकाल में जब भी किया आपकी ही प्रेरणा से। इसी प्रकार जिस उपकरण द्वारा किया गया, जिसका भी किया गया जिससे किया गया जिसके लिये किये गया, जिस प्रकार भी किया गया, जो कुछ उत्पन्न किया गया, अथवा नवीन उत्पन्न न करके रूपान्तर ही किया गया, बदला ही गया वह सभी आपका ही रूप है, आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कर्ता, कर्म, करण, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन रूप में आप ही आप हैं, ऐसे सर्वस्वरूप प्रभु के पादपद्मों में मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। प्रभो ! मुझे इस भवसागर से पार लगाइये। मुझ डूबते हुए को करावलम्ब दीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार प्रह्लादजी ने अपने उद्धार की प्रार्थना की अब आगे जैसे ऐश्वर्य की तुच्छता बताते हुए प्रार्थना करेंगे, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।"

छप्पय

भगवन् ! अति भयभीत भयो भव जनम मरन तैं।
भटकत इतउत फिरूँ सदाश्रो कमल चरन तैं॥
सत् पुरुषनि सहवास करूँ बनि दास तिहारो।
सुनि सुनि लीला कथा तरूँ तव नाथ ! सहारो॥
जननी शिशु भेषज रुजहिँ, डूबतकूँ नौका नहीं।
रक्षक तुम बिनु है सकैं, सबके रक्षक आपुही॥

पद

नरहरि ! सरल रूप अब धारो।
मार्‌यो असुर विकट तनु धरि हरि, अब जग यश विस्तारो ॥१॥
थर थर कांपत सुरगन सबरे, लखि यह रूप तिहारो।
भगवन् ! भय मोकूँ नहिं नेंकहु, भवसागर तैं तारो ॥२॥
मेरे माता पिता सगे सब, जनम मरन भय टारो।
परवश समुझि सबनिकूँ स्वामी, तुमने लयो सहारो ॥३॥
हे शिव ! तुम बिनु शव सम सबहो, तुम जीवन संचारो।
जब तैं चरन शरन प्रभु लीन्हीं, भय भगि गयो हमारो ॥४॥

———

प्रह्लाद-कृत नृसिंह स्तुति(३)

(५४)

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः,
कालेन चोदित गुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयार्पित षोडशारम्,
संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥*॥

(श्री भा० ७ स्क० ९अ० २१ श्लो०)

छप्पय

माया मनकूँ रचै यही भव पन्थ घुमावै।
पेरै कोल्हू माहिँ जनम पुनि पुनि करवावै॥
मायाके प्रभु ईश बरजि नटिनीकूँ दीजे।
भव बन्धनकूँ काटि खींचि चरननि में लीजे॥
धन, वैभव, यश, स्वरग सुख, अभिलाषा नहिं नाथ हो।
कथा कीरतन महँ सुरुचि, तव दासन को साथ हो॥

---

* नरहरि भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—भगवन्! जब कालके द्वारा तीनों गुणोंमें क्षोभ होता है और आपके अंशभूत पुरुष की दृष्टि पड़ती है तब माया मन प्रधान लिंग देहको रचना करती है। यही कर्मस्थान, अत्यन्त ही बलवान, त्रैगुण्य विषय तथा वेदमय अविद्यार्पित सोलह विकार रूप आरासे युक्त संसार चक्र है। सो हे अज! आपके अतिरिक्त इस संसार चक्रको कौन तर सकता है। अन्य कौन पार पहुँच सकता है।

मानव अपने क्षुद्र अनित्य तथा क्षण भंगुर ऐश्वर्य के पीछे उन अजन्मा के महान् शाश्वत तथा सदा सर्वदा समान भाव से रहने वाले ऐश्वर्य को भूल जाता है। वास्तव में तो भगवान् के अपार ऐश्वर्य की कोई तुलना ही नहीं हो सकती। इन संसारी भोग वासनाओं से मन हटे तभी वह भगवद्दास्य का अहैतुकी भक्ति का अधिकारी बन सकता है।

सूतजी कहते हैं मुनियो! नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"प्रभो! मेरा मन इन संसारी भोगों की ओर दौड़ता है इस अगाध अपार भवसागर में डूबना चाहता है मैंने सब ओर दृष्टि पात किया सबसे सहायता की याचना की किन्तु कोई ऐसा दिखायी नहीं दिया जो इस भवसागर से पारलगादें, जो इस बन्धन से छुड़ा दे, जोडूबते हुए को बचा ले।आप ही एक पार लगाने वाले दृष्टिगोचर होते हैं। आप के अतिरिक्त न कोई पार जा सकता है न आप से पृथक रह कर कोई पार पा ही सकता है।

यह आपकी क त्रिगुण मयी माया है। यह कल्पान्त में सो जाती कल्पपर्यन्त अचेतन बनी रहती है। जब इसके चैतन्य होने का समय आता है तो काल देव जाकर इसे गुदगुदाते हैं। उस गुदगुदी से इसके चित्त में कुछ क्षोभ होता है। इसके गुणों में विषमता आती है। किन्तु जब तक आपका पुत्र इसकी ओर दृष्टि पात नहीं करता जब तक आपका अंश भूत पुरुष आँख नहीं मिलाता तब तक यह कुछ कर नहीं सकती। पुरुष की दृष्टि मात्र पड़ते ही यह गर्भिणी हो जाती है और मनः प्रधान लिङ्गदेह की रचना करती है। जो अत्यन्त ही बली है। सबसे अधिक भागने दौड़ने वाला है जो कर्म करने में समर्थ है। जो माया मोहित जीव अभिलाषा युक्त है। जैसे पद्म मात्रा अक्षरों से बँधे रहते हैं ऐसे ही यह जीव पुण्य पाप आदि कर्मों

से आवद्ध है। जो सात्विक राजस तामस त्रिगुण्य विषय वाले वैदिक कर्म क्लाप में आसक्त है। यह एक बड़े ही तीक्ष्ण धार वाले और के सदृश है जो घूमता रहता है। जिसमें अविद्या द्वारा अर्पित सोलह विकार रूप अरा हैं फार हैं। शब्द रूप रस गंध स्पर्श पाँच कर्मेन्द्रिय तथ पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन इसप्रकार १६ धार वाला यह चक्र है। इस संसार चक्र को पार करने में अन्यकोई समथ नहीं। जो आपका अनन्य सेवक होगा। अनन्य दासतथा अनन्योपासक होगा वही इसे पारकर सकता है।

स्वामिन् ! यह सोलह बेलनों वाला एक यन्त्र है। जैसे यन्त्र में ईख के दंडे डालकर वे पेरे जाते हैं। ऐसे ही संसार चक्र मुझे भोगों में घुमाकर पेर रहा है। आप हा इससे मेरी रक्षा कर सकते हैं। क्यों कि आप ईश्वर हैं सर्व समर्थ हैं। बुद्धि के जितने गुण हैं उन सब पर अपनी चैतन्य शक्ति द्वारा प्रज्ञा सर्वदा विजय पाने वाले हैं। इस माया का नियन्त्रण काल ही तो करते हैं और काल आपके अतिरिक्त कोई अन्य है नहीं अतः काल रुप से आप साध्य साधन को अपने अधीन रखते हैं। अतः इस संसार चक्र में डालकर पेरे जाने वाले जीवों को उनसे बचाने में आप ही समर्थ हैं। इस चक्र में सभी जीव पेरे जा रहे हैं किन्तु जो आपके अनन्य है। शरणागत हैं, प्रपन्न हैं। वे बच गये हैं वे पृथक पंक्ति में आनन्द से बैठे हुए हैं प्रभो! मुझे भी उसी पंक्ति में बिठा दीजिये। मुझे अपने पाद पद्मों के समीप खींच लें। अपने चरण कमलों की छत्र छाया में आश्रय प्रदान करें।

आप कहेंगे, अरे यह क्या माँग रहा है, संसार के बड़े से बड़े सुखों को क्यों नहीं माँग लेता। लोक पालों के सदृश कल्पान्त आयु माँग ले स्वर्गीय सुखों को माँग ले अचंचला स्थायी

सम्पदा माँग ले, सबसे बड़ी विभूति माँग ले और, इन सबको लेकर सुखों का उपभोग कर लो भगवन् ! इन सबकी निस्सारता तो मैं प्रत्यक्ष ही देख चुका हूँ। जो लोग इनका रहस्य जानते हों इनसे अपरिचित हों, वे भले ही इन वस्तुओं के लिये लालायित रहें किन्तु प्रभो ! आपसे इन तुच्छ वस्तुओं की याचना की जाय तो यह बड़ा भारी दुर्भाग्य ही होगा। ये वस्तुएँ अवश्य ही तप से प्राप्त होती होंगी किन्तु इनका मूल्य ही क्या ? जो उनसे भी बली आया उसी ने क्षण भर में इन्हें नष्ट कर दिया। मेरे असुर राज पिता ने ही कितने ही लोक पालों के गर्व को खर्व कर दिया कितने सम्पत्ति शालियों को धूलि में मिला दिया कितने विभूति वालों को दरिद्र कर दिया। मेरे पिता को इन्हें नाश करने में कोई प्रबल परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ा था उनके तनिक से क्रोध युक्त हास्य से उनकी तनिक सी भृकुटि विलास से इनका अन्त हो गया, बालू की भीति के समान कँगूरे लगाते ही ये सब ढह गयीं तो फिर इतनी तुच्छ वस्तुओं के लिये आपसे याचना करूँ तो मुझसे अधिक अभागा और कौन होगा ? मुझसे बढ़कर दूसरा स्वार्थ अकुशल और कहाँ मिलेगा ? जिन सबसे श्रेष्ठ समझा जाने वाला श्री आयु और विभूतियों को मेरे पिता ने व्यर्थ बना दिया उस उतने बड़े बली मेरे पिता को भी आपने बात की बात में मार डाला, उसके बड़े पेट को चीर कर उसकी आँतों को निकाल लिया तो फिर आप से क्यों न किसी बड़ी वस्तु की आशा करूँ। जिन्हें असुर प्रकृति का पुरुष भी नष्ट करने मे समर्थ हो सकता है। उनकी याचना आप असुरारि से क्यों करूँ ?

यदि मैंने इन सबका परिणाम प्रत्यक्ष न देखा होता तो संभव है मैं इनके भुलाव में आ जाता। इनकी इच्छा कर भी बैठता, किन्तु इनका परिणाम तो मेरे नेत्रों के सम्मुख है। अतः

मैं लोक पालों को तो बात ही क्या द्विपरार्ध तक रहने वाले ब्रह्मा जी की आयु भी नहीं चाहता। मैं ब्रह्मलोक तक के बड़े से बड़े वैभव की भी वांछा नहीं करता उत्तम से उत्तम इन्द्रिय सम्बन्धी भोगों के लिये भी लालायित नहीं न मुझे बड़ी से बड़ी विभूति ही चाहिये। मुझे यदि आप कुछ देना ही चाहें तो साधुओं की संगति ही दीजिये। अपने भक्तों की सूची में मेरा भी नाम लिख लीजिये, अपने अनन्य सेवकों की गणना में मेरा भी नाम सम्मिलित कर लीजिये। अपने दासों की पंक्तिमें मुझे ले चलकर बिठा दीजिये। यह मेरी आप से एक मात्र याचना है।

हे सुख स्वरुप भगवन्! कोई अग्नि की भट्टी के समीप रहकर क्या ताप से बच सकता है? क्या कोई मृग मरीचिका के जल से अपनी तृषा शान्त कर सकता है? प्रभो! ये विषय-भोग मृगतृष्ना के जल के समान देखने में आशावर्धक सुखदायी से प्रतीत होते हैं, वास्तव में ये असत् हैं मिथ्या हैं परिणाम में दुःखों को देने वाले हैं जिस शरीर से सुख भोगने की इच्छा की जाती है वह एक रस रक्त और हड्डियों से बना नस नाड़ियो से सिला थैला है, जिसके ऊपर केश रोम युक्त मांस ऊपर चढ़ा दिया गया है, इस थैले में विष्ठा, मूत्र, कफ, खखार और भाँति भाँति मल ठूँस ठूँस कर भरे हुए हैं, रोगों को उत्पन्न करने का यह थैला मुख्य स्थान है, रोगों का खेत है, व्याधियों का घर है। सड़ने वाली दुर्गन्ध परिणामी वस्तुओं से यह बना है। इस ऐसे शरीर से मिथ्याओं को भोगते हुए यह जीव शान्त नहीं होता विरत नहीं बनता, प्रत्युत उसकी अभिलाषा और अधिक बढ़ती ही जाती है। ये भोगभी सबको सरलता से सुलभ हो जायँ, सो भी बात नहीं। बड़े परिश्रम से अत्यंत कठिनता से ये सब प्राप्त होते हैं, इसमें भी चारों ओर भय ही भय दृष्टि गोचर होता है।

जैसे कोई मधु के लोभ से वट वृक्ष पर चढ़ जाय और वहाँ उसे रीछ मिल जाय, नीचे उसकी लट पकड़कर उतरने की इच्छा से जड़ के समीप में सिंह बैठा हुआ दिखायी दे, पैरों के नीचे अंधकूप हो और उसमें लपलप जीभ करता हुआ काला भुजंग नाग बैठा हो, जिस वट के सूत्रों को लटकती हुई लटों को पकड़े वह लटका है उसे काले गोरे दो चूहे काट रहे हों इतने पर भी जो कभी कभी मधुका छत्तासे टपकता हुआ मधु उसके मुख में पड़ जाता है, उसीके स्वाद के वशी भूत होकर नाना कष्टों को झेलता हुआ जैसे वह अधर में लटका रहता है, उसी प्रकार यह जीव भी विषय भोग रूपी मधुकणों से अपना भोगेच्छा रूप अग्नि को शान्त करना चाहता है, इतने कष्ट झेल कर भी विरक्त होना नहीं चाहता, उसी से फँसा रहना चाहता है। यह कैसे आप की दुरत्यया माया है। प्रभो! मुझे इससे पार पहुँचाइये। मेरी संसारी वासनाओं को समाप्त करके अपने पाद पद्मों का आश्रय प्रदान कीजिये। यही मेरी एकमात्र अभिलाषा है।

सूतजी कहते हैं, मुनियों! इस प्रकार प्रह्लादजी ने इन अनित्यघन वैभव तथा सम्मान आदि की अनित्यता तथा दु ख रूपता दिखायी, अब वे जैसे आगे भगवान् नर हरि की कृपा का आभार प्रदर्शित करते हुए अपनी कृत कृत्यता का वर्णन करेंगे, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

धन वैभव परिनाम निहारे निज नेत्रनि तैं।
लोकपाल, सुर इन्द्र कँपे पितु सम दैत्यनि तैं॥
इतनो प्रबल प्रचंड दैत्य चुटकी में मारयो।
इच्छा नहिं ऐश्वर्य नाथ! हौं भव पथ हार्‌यो॥

थैला तन मल मूत्र को , मृगतृष्णा सम भोग सब ।
भोगत भटक्यो जनम बहु , लेउ चरन की शरन अब ॥

पद

भव बन्धन तें नाथ छुड़ायो ।
रैनि दिवस द्वै पाट कालक पिसत पास बैठायो ॥१॥
चक्की चले निरन्तर निसिदिन सबरो लोक पिसायो ।
कील समीप शोकभय नाहीं यह आदरस दिखायो ॥२॥
लोक पाल अज सुरगन सबरे, मम पितु गरब घटायो ।
सो अति बली छली असुराधिप छिनमें मारि गिरायो ॥३॥
विषय भोग हैं, विष सम सगरे, तनु धर रोग कहायो ।
होय न शान्त अगिनि बिन्दुनि तें, प्रभु सेवक अपनायो ॥४॥

—::—

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति(४)

(५५)

क्वाहं रजःप्रभव ईशतमोऽधिकेऽस्मिन्,
जातः सुरेतर कुले क्व तवानुकम्पा।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥*

(श्री भा० ७ स्क० ९ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

करुनाकर करि कृपा कमल कर सिर धरि दीयो।
यह सौभाग्य न रमा, शंभु, अज देवनि लीयो॥
असुर अधम अति अज्ञ आइ अच्युत अपनायो।
भाववश्य भगवान् कल्प तरु भाव दिखायो॥
सबके सच्चे सुहृद् हरि, अन्तरात्मा जगत के।
ऊँच नीच को भेद नहिं, वश होओ प्रभु भगत के॥

भक्त जब अपने क्षुद्रता और भगवान् की महत्ता का अन्तःकरण से अनुभव करने लगता है, तब वह कृतार्थ हो

---

*नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी कह रहे हैं—हे जगदीश! कहाँ तो रजोगुण से उत्पन्न हुआ तमो गुण प्रधान दैत्य दानव कुलोत्पन्न मैं और कहाँ आप की अनुकम्पा? आपने कृपा करके अपना वह परम प्रसाद स्वरूप वरद कर कमल मेरे सिर पर रखा है जिसे आपने न कभी ब्रह्मा जी के सिर पर रखा न महादेव जी तथा लक्ष्मी जी के ही सिर पर रखा है।

जाता है, वैसे तो सभी उन परात्पर प्रभु के अंश हैं, सब पर भगवान् का समान भाव है, भगवान् की कृपा वृष्टि बिना भेद भाव के सब पर सदा सर्वदा सब काल मे हो रही है। अन्तर इतना ही है, जो अपनी स्थिति का और भगवान् की महत्ता को जानकर उसका अनुभव नहीं करते विषय भोगों को ही सब कुछ समझ कर उनकी प्राप्ति के निमित्त निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, वे जहाँ के तहाँ ही रह जाते हैं, चौरासी के चक्कर में घूमते रहते हैं, कभी भाग्यवश पुण्य प्रभाव से इन्द्र बन जाते हैं, फिर प्रवाह में बहते बहते कीट पतंग चींटा चींटी बन जाते हैं। उनका गमनागमन लगा ही रहता है। आवागमन से कभी छुटकारा नहीं पाते।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए कह रहे हैं। प्रभो! कहाँ मैं और कहाँ आप? कहाँ आप की महत्ता कहाँ हमारी क्षुद्रता। कहाँ आप की अनुपम कृपा और कहाँ हमारी असीम कृतघ्नता। कोई तुलना ही नहीं, आकाश पाताल का अन्तर है बताना भी अपर्याप्त है। आप की मुझ अज्ञ बालक पर इतनी भारी कृपा, इतनी अधिक अनुग्रह ऐसी अनुपम अनुकम्पा सोचकर महान् आश्चर्य हो रहा है। एक तो मेरा जन्म भी रजो गुण से हुआ है, जिन दिनों पिता जी देवताओं पर अत्यधिक क्रोध कर रहे थे, सबको अपने अभिमान में भर कर अपमानित करते थे उस समय मैं माताके उदर में आया। कुल परम्परागत संस्कार या सदाचार भी शुभ होता तो भी मेरी बुद्धि शुद्ध हो सकती थी। उत्पन्न भी मैं असुर कुल में हुआ, जो सदा काम क्रोध लोभ मोह जो रजो गुण तमो गुण के कार्य हैं उनमें सदा भरे रहे थे। असुर गण तम प्रधान आसुरी प्रकृति के दूसरों से ईर्ष्या करने वाले शरीर को ही सब कुछ समझने वाले, निद्रा आलस्य और प्रमाद में सदा निमग्न रहने वाले तथा

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति(४)

(५५)

क्वाहं रजःप्रभव ईशतमोऽधिकेऽस्मिन्,
जातः सुरेतर कुले क तवानुकम्पा।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥*

(श्री भा० ७ स्क० ९ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

करुनाकर करि कृपा कमल कर सिर धरि दीयो।
यह सौभाग्य न रमा, शंभु, अज देवनि लीयो॥
असुर अधम अति अज्ञ आइ अच्युत अपनायो।
भाववश्य भगवान् कल्प तरु भाव दिखायो॥
सबके सच्चे सुहृद् हरि, अन्तरात्मा जगत के।
ऊँच नीच को भेद नहिं, वश होओ प्रभु भगत के॥

भक्त जब अपने क्षुद्रता और भगवान् की महत्ता का अन्तःकरण से अनुभव करने लगता है, तब वह कृतार्थ हो

---

*नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी कह रहे हैं—हे जगदीश! कहाँ तो रजोगुण से उत्पन्न हुआ तमो गुण प्रधान दैत्य दानव कुलोत्पन्न मैं और कहाँ आप की अनुकम्पा! आपने कृपा करके अपना वह परम प्रसाद स्वरूप वरद कर कमल मेरे सिर पर रखा है जिसे आपने न कभी ब्रह्मा जी के सिर पर रखा न महादेव जी तथा लक्ष्मी जी के ही सिर पर रखा है।

जाता है, वैसे तो सभी उन परात्पर प्रभु के अंश हैं, सब पर भगवान् का समान भाव है, भगवान् की कृपा वृष्टि बिना भेद भाव के सब पर सदा सर्वदा सब काल मे हो रही है। अन्तर इतना ही है, जो अपनी स्थिति का और भगवान् की महत्ता को जानकर उसका अनुभव नहीं करते विषय भोगों को ही सब कुछ समझ कर उनकी प्राप्ति के निमित्त निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, वे जहाँ के तहाँ ही रह जाते हैं, चौरासी के चक्कर में घूमते रहते हैं, कभी भाग्यवश पुण्य प्रभाव से इन्द्र बन जाते हैं, फिर प्रवाह में बहते बहते कीट पतंग चींटा चींटी बन जाते हैं। उनका गमनागमन लगा ही रहता है। आवागमन से कभी छुटकारा नहीं पाते।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए कह रहे हैं। प्रभो ! कहाँ मैं और कहाँ आप ? कहाँ आप की महत्ता कहाँ हमारी क्षुद्रता। कहाँ आप की अनुपम कृपा और कहाँ हमारी असीम कृतघ्नता। कोई तुलना ही नहीं, आकाश पाताल का अन्तर है बताना भी अपर्याप्त है। आप की मुझ अज्ञ बालक पर इतनी भारी कृपा, इतनी अधिक अनुग्रह ऐसी अनुपम अनुकम्पा सोचकर महान् आश्चर्य हो रहा है। एक तो मेरा जन्म भी रजो गुण से हुआ है, जिन दिनों पिता जी देवताओं पर अत्यधिक क्रोध कर रहे थे, सबको अपने अभिमान में भर कर अपमानित करते थे उस समय मैं माताके उदर में आया। कुल परम्परागत संस्कार या सदाचार भी शुभ होता तो भी मेरी बुद्धि शुद्ध हो सकती थी। उत्पन्न भी मैं असुर कुल में हुआ, जो सदा काम क्रोध लोभ मोह जो रजो गुण तमो गुण के कार्य हैं उनमें सदा भरे रहे थे। असुर गण तम प्रधान आसुरी प्रकृति के दूसरों से ईर्ष्या करने वाले शरीर को ही सब कुछ समझने वाले, निद्रा आलस्य और प्रमाद में सदा निमग्न रहने वाले तथा

हिंसा परापवाद में निरत रहने वाले हैं। ऐसे रज तम प्रधान कुल में मेरी उत्पत्ति हुई। इतने पर भी आप ने मुझ अधम पर अनुग्रह की, अनुग्रह भी साधारण नहीं अपनी गोदी में बिठाकर वात्सल्य रस से संसिक्त, अनुग्रह से आर्द्र कृपाभाव से परिपूर्ण, परम पुरुषार्थ स्वरूप सकल सन्ताप हारी अपना कर कमल मेरे सिर पर स्वतः ही रख दिया। तब अब बताइये ऐसा सौभाग्य आज तक किसे प्राप्त हुआ होगा? इतना प्रेम प्रसाद संसार में किसे मिला होगा।

मैं अनुमान करता हूँ, कि ब्रह्मा जी आप के सबसे प्रिय सबसे जेष्ठ श्रेष्ठ आदि पुत्र हैं। पिता का जेष्ठ श्रेष्ठ सर्व गुण सम्पन्न योग्य पुत्र पर अत्यधिक प्रेम होता है ब्रह्माजी जो आप के नाभि कमल से उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते ही भयभीत की भाँति आप की स्तुति करने लगे, आपने भी उन्हें तप करने का आदेश दिया। तपस्या से समर्थ हुए सृष्टि करने लग गये सबके पितामह बन गये, गम्भीरता आ गई। वे कभी आप की गोदी में बैठे हों इसका मैं अनुमान भी नहीं कर सकता, आप ने अनुग्रह से परिपूर्ण अपना अभय प्रद वरद हस्त उनके मस्तक पर कभी रखा होगा इसमें सन्देह है।

दूसरे सबसे बड़े देव भव हैं-रुद्र देव हैं, वे ब्रह्मा जी की भ्रुकुटि फोड़कर उत्पन्न हुए। होते ही रोने लगे। स्थान, नाम, गृह आदि माँगने लगे। ब्रह्माजी ने यह सब दे दिया, तो वे लगे भूत प्रेत पिशाच और रुद्रों की सृष्टि करने। कभी आप ने उन त्रिनेत्र को गोद में बिठाकर मुँह चूमकर प्यार किया होगा, उनके सिर पर वात्सल्य पूर्ण श्री हस्त रखा होगा, इसमें भी सन्देह है। अब रही जगदम्बा लक्ष्मी देवी। अब उनके सम्बन्ध में तो मैं क्या कहूँ, वे आपकी अर्धाङ्गिनी ही ठहरी। माता के

सम्बन्ध में पुत्र को कुछ कहने का भी अधिकार नहीं, किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ आप ने वात्सल्य पूर्ण कर कमल तो उनके सिर पर कभी रखा ही न होगा। वात्सल्य रस का अधिकारी तो पुत्र ही होता है और मैं आप का पहिला पुत्र हूँ जिसे ऐसा देव दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है, फिर मैं अपने भाग्य की किन शब्दों में सराहना करूँ ?

प्रभो ! मेरे लिये तो यह बड़े ही सौभाग्य की बात है, किन्तु आप के लिये यह कोई आश्चय की बात नहीं है। आप कहेंगे, कि आश्चर्य की क्यों नहीं है, इतने बड़े सब से श्रेष्ठ देवाधिदेव महादेव के सिर पर हाथ नहीं रखा, वेद गर्भ सर्वज्ञ प्रजापतियों के पति ब्रह्मा जी को भी जो सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ वह तुम जैसे अधम असुर कुल में उत्पन्न छोटे से शिशु को प्राप्त हो गया ?

सो, भगवन् ! यह बात नहीं। उत्तम अधम श्रेष्ठ कनिष्ठ ऊँचा नीचा तथा छोटे बड़े का भेद भाव तो हम संसारी जीवों में ही होता है। आप की दृष्टि में कौन छोटा कौन बड़ा, कौन ऊँचा कौन नीचा ? आप के लिये तो सभी समान हैं, सभी एक से हैं, आप असुर ही समझकर किसी की उपेक्षा नहीं कर देते। केवल उत्तम कुल में उत्पन्न होने के ही कारण उसे छाती से नहीं चिपटा लेते। आप तो सर्वान्तिर्यामी हैं, जगदात्मा हैं, सबके भीतर समान भाव से रहने वाले हैं सबके सुहृद् हैं, बन्धु हैं, प्रेष्ठ हैं। आप के लिये सभी एक से हैं बराबर हैं।

इतना सब होने पर भी भगवन् ! भावानुसार भक्तों में भी भेद तो हो ही जाता है। प्रत्यक्ष जगत में देख ही रहे हैं, कोई सुखी है कोई दुखी है कोई अधिक कृपा पात्र है, किसी को उतनी कृपा प्राप्त नहीं है। यह भेद भाव तो भगवन् ! सेवा के कारण

कृपा गठरी बाँधे ही रहते हैं, आप का द्वार तो सदा सर्वदा सबके लिये समान रूप से खुला ही रहता है, किन्तु कोई अभागा लेने ही न आवे तो आप क्या करें। आप किसी को मना नहीं करते कि तुम मत आओ। किन्तु जो कृपा लेना ही न चाहे तो आप कैसे दें। कल्प वृक्ष है, वह किसी प्रकार का भेद भाव नहीं बरतता। जो उसके नीचे जाय, वहाँ जाकर जो भी इच्छा करे उसे वही वस्तु प्राप्त होगी। कल्प वृक्ष के समीप रहकर भी जो उसके नीचे जाकर भी सिंह का चिन्तन करे उससे भय करे तो उसे सिंह का भय ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार जो आप की सेवा करते हैं, तो सेवा के फल स्वरूप उनमें सद् धर्म उत्पन्न होते हैं, उनके आचरण से आपकी प्राप्ति होती है। इसमें मुख्यता सेवा भाव की है, कुलागत उच्चता नीचता इसमें कोई भी कारण नहीं है। जो आप की सेवा सुश्रूषा में संलग्न रहे उसे आप सत्य स्वरुप की प्राप्ति होगी, जो विषय भोगों में संलग्न रहेगा इन्द्रियों की स्वादों की ओर दौड़ेगा वह संसार कूप में गिरेगा। आज अज्ञ लोग अमृत स्वरूप आप की भक्ति को छोड़कर संसार रूप अंध कूप में स्वेच्छा से गिरते जाते हैं जिसमें काल रूप चितकबरा हो जिह्वाओं वाला सर्प बैठा हुआ जीभों को लपलपा रहा है। संसारी लोग अंधे होकर दूसरों की देखा देखी उसी कूप में कूदते जाते हैं। कूदते जाते हैं।

हे प्राणाधार! हे परम श्रेष्ठ! हे पतित पावन! विषयाभिलाषी पुरुषों का साथ करने के कारण उनके संग दोष से उन सब की देखा देखी मैं भी उस अंध कूप की ओर उनके पीछे पीछे जा रहा था, किन्तु उस समय एक वीणाधारी परोपकार निरत स्वार्थ रहित दृढ़ व्रती आप के अनन्य सेवक देवर्षि नारद ने मुझे अहैतुकी कृपा वश बचा लिया, उन्होंने अनाथ

समझकर मुझे अपना लिया, उस अंध कूप में गिरने से रोक लिया, मुझे बल पूर्वक अपना बनाकर स्वीकार कर लिया, अपना उपदेशामृत पानकराकर ज्ञानाञ्जन को मेरी आँखों में आँजकर उस गहन कूप का रहस्य प्रत्यक्ष दिखा दिया। उन्हीं का यह असीम अनुग्रह है कि आज मैं अच्युत का देव दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। जिन हरि भक्तों ने जिन आप के अनन्त उपासकों ने जिन आप के दयालु दासों ने मुझे मुक्ति का मार्ग दिखाया, आप का साक्षात्कार कराया उन आप के भृत्यों की सेवा भला मैं कैसे त्याग सकता हूँ। मेरे तो सर्वस्व वे भगवद् भक्त हैं, उन्हीं की अनुकम्पा से तो यह अनुपम अवसर उपलब्ध हो सका है।

हे दयालो! मेरे पिता का अभिमान बहुत अधिक बढ़ चढ़ गया था, पराकाष्ठा का पर पहुँच गया था, वे अपने को ईश्वर सर्वश्रेष्ठ महापुरुष मानने लगे थे। वे मुझे मारने को कटिबद्ध हो गये थे, मेरा अन्त करने को कृत संकल्प थे, उन्होंने पुत्र स्नेह को तिलाञ्जलि दे दी थी। हाथ में खड्ग लेकर और मुझे कस कर पकड़कर वे गरज कर बोले—"अब बता मेरे अतिरिक्त अब कौन तेरा ईश्वर है, यदि कोई है, तो उसे पुकार, अब आकर वह तेरी रक्षा करे, तुझे मेरे खड्ग के प्रहार से बचावे। मैं अभी तेरे सिर को धड़ से पृथक करता हूँ।" उस समय हे अनन्त! आप ने ही नृसिंह रूप रखकर मेरे प्राणों की रक्षा की और मेरे आततायी पिता का वध किया। आप ने इतना कष्ट क्यों किया? क्यों आप कठोर खंभे से आधे नर और आधे सिंह होकर उत्पन्न हुए?

मैं तो समझता हूँ आप अपने अनुगत अनन्योपासक नारद जी के वचनों को ही सत्य सिद्ध करने के लिये उत्पन्न हुए थे।

मेरे गुरु नारद जी ने मुझे उदर में ही यह सिखाया था, कि श्री हरि सर्वत्र हैं सब में हैं और सब कुछ करने में समर्थ हैं। उसी ज्ञान के आधार पर मैंने पिता जी के पूछने पर कह दिया था, कि मुझमें, तुममें, खड्ग में और खम्भ में सर्वत्र मेरे श्रीहरि विराजमान हैं, कोई ऐसा स्थान नहीं, कोई ऐसा काल नहीं कोई ऐसी वस्तु नहीं जहाँ वे न हों।" जब पिता खड्ग का प्रहार करना ही चाहते थे और आप फिर भी प्रकट न हुए तो मुझे नारद जी के वचनों पर कुछ शंका सी होने लगी। बस, यही बात आप को असह्य प्रतीत हुई। मेरे भक्त का भाषण असत्य ही प्रतीत हो सकता है। मेरे अनन्य उपासक की बात असत्य हो सकती है, इसी लिये आप तुरन्त ही पत्थर के खम्भ से धम्म से प्रादुर्भूत हो गये और अपनी भक्त वत्सलता भक्तवश्यता सिद्ध करके दिखा दी। इसलिये मेरी दृष्टि में तो आप मेरी रक्षा के लिये नहीं मेरे गुरु के वाक्यों को सत्य बनाने के लिये अपने भक्त के वचनों को अटल अलीक बनाने के लिये उत्पन्न हुए थे। जिन भक्तों पर आप का इतना अधिक अनुराग है उनकी सेवा को मैं भूलकर भी नहीं त्याग सकता उनका मैं आप के ही समान आदर करता रहूँगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। इस प्रकार प्रह्लाद जी ने अपनी कृत कृत्यता तथा भगवान् की भृत्यवश्यता का वर्णन किया, अब आगे वे जैसे जगत् और जगदीश्वर की बीज वृक्ष रूप से एकता का वर्णन करेंगे, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आप उसे समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

जग भोगनि में फँसे नरनि के संग दोष तैं।
अन्ध कूप में गिरत रुक्यो गुरु ज्ञान दोप तैं॥
गुरु नारद उपकार नाथ नहिं कबहुं भुलाऊँ।
तव दासनि नित पूजि चरन महँ शीश नवाऊँ॥
असि लै पितु मारन चले, सत्य करन सेवक वचन।
प्रकट भये प्रभु खम्भ तैं, भगत बछल अशरन शरन॥

पद

दासनि देते देव बड़ाई!
कहँ अघ असुर अधम कुत्सित कुल, कहँ प्रभु की प्रभुताई॥१॥
जो सौभाग्य दयो सेवक कूँ, नहिँ ताकी समताई।
नहिँ पायो अज शंभु सुरेश्वर अरधाङ्गिनि श्री माई॥२॥
भक्ति भाव तैं नरहरि रीझौ, केवल गुन न सुहाई।
तव दासनि पद पकरि पार हों, मारग दयो दिखाई॥३॥
भक्तनि प्रन पूरन करिवे हरि अद्भुव देह दिखाई।
प्रनत पाल प्रन पालक प्रभु जी, पद पदुमनि सिर नाई॥४॥

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति

(५६)

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्व-
माद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदम्,
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥*

(श्री भा० ७ स्क० ९ अ० ३० श्लो०)

छप्पय

जगत रूप तुम बने गुननितें जाइ बनाओ।
आदि मध्य अरु अन्त आपुई आपु लखाओ ॥
हैकें एक अनेक दिखो मायावश स्वामी।
तुम बिनु और न कछू बीज द्रुप नामहु नामी ॥
जाको जतें जनम थिति, लय प्रकाश तद्रूप हो।
तैसे तुम जग बनि गये, बीज वृक्ष फल फूल सो ॥

नट जैसे अपनी माया से नाना रूप बना लेता है, किन्तु वे सब रूप उसी के होते हैं, उससे भिन्न कुछ नहीं होता। वर्णों के कारण, तथा चित्र विचित्र रूप तथा वेष बदलने के कारण तथा

---

* स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे प्रभो! एकमात्र आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के रूप में हो गये हैं। इसके आदि में, अन्त में, और मध्य में भी आप ही अवस्थित हैं। आप यद्यपि एक हैं फिर भी अपनी माया से गुणों के परिणाम स्वरूप इस सम्पूर्ण जगत् की रचना करके और इसके बाहर भीतर ओत प्रोत होकर उन गुणों के कार्यकलापों के कारण बहुत से प्रतीत होते हैं।"

बनावटी नाम रख लेने के कारण स्वतः उसके रूप में कोई विकार नहीं आता। वह तो वही रहता है। नाम कृत, तथा उपाधिकृत भेद हैं, सो ये सब वस्तुयें क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं, अनित्य हैं असत् हैं, सब काल में रहने वाली नहीं हैं। इन वस्तुओं के माध्यम से जो नाना खेल दिखा रहा है वह नट ही सत्य है, और सब प्रपञ्च है, विडम्बना है, खेल है, मनोरंजन है, हस्तकौशल है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए भक्तराज प्रह्लादजी कह रहे हैं—"प्रभो! एकमात्र तुम ही सत्य हो, तुम ही शाश्वत हो, तुम ही चिरंतन हो, और सब तो आपका ही बनाया खेलमात्र है, सब आपका ही रूप है, आपका ही माया विनोद है। इस जगत् को आप ही बनाते हैं और आप ही संहार करते हैं। बनाते समय आपको राग नहीं बिगाड़ते समय इससे कोई द्वेष नहीं, बनाना खेल बिगाड़ना भी खेल। बनाते समय हर्ष नहीं, बिगाड़ते समय विषाद नहीं। बनाना भी मनोरंजन के लिये और बिगाड़ना भी मनोरंजन के लिये। एक सिद्धान्त है जो आदि अन्त में होता है वही उसके मध्य में भी रहता है। जैसे घड़े बनने के आदि में भी मिट्टी थी, घड़ा बिगड़नेपर भी मिट्टी ही रह जायगी, तो मध्य में जो घड़ा दीखता है उसके नाम रूप की ओर ध्यान न दो तो मध्य में भी वह शुद्ध मिट्टी ही मिट्टी है। खिलौना बनने के पहिले भी चीनी थी, खिलौना बिगाड़ दो तो भी चीनी ही रह जाती है, बीच में जो चीनी के हाथी घोड़ा भिन्न भिन्न नाम रूप वाले दिखायी देने लगते हैं, उनमें भी चीनी के अतिरिक्त कुछ नहीं। कटक कुण्डल बनने के पूर्व भी सुवर्ण ही था उन्हें तोड़ दो गला दो तो भी सुवर्ण ही शेष रहेगा मध्य में जो सुन्दर कटक कुण्डलादि आभूषण हो गये हैं उनमें भी सोना ही सोना है। भीत पर चित्र बनाने के पूर्व भी

गेरू था, बिगाड़ दो तो भी वही रहेगा, बीच में जो विभिन्न नाम रूप वाले चित्र दीखते हैं उनमें भी रंगों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार हे भगवन्! इस सृष्टि के पूर्व भी आप ही थे, सृष्टि का संहार होने पर ही आप ही रह जायँगे, बीच में जो यह नाना नाम रूपों वाला प्रपञ्च दृष्टिगोचर हो रहा है उसमें भी सर्वत्र आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

हे अद्वय! आप एक हैं, न आपके कोई समान है न कोई दूसरा ही है, फिर भी आप माया के गुणों के परिणाम इस दृश्य प्रपञ्च इस विश्व ब्रह्मांड को रचकर उसमें अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। जैसे मकड़ी स्वयं ही अपने मुख से सूत्र निकाल कर जाले की रचना करती है और स्वयं ही उसमें किकोल करके आनन्द का अनुभव करती है, जब इच्छा होती है उस जाले को पुनः निगल जाती है, फिर से पेट में रख लेती है। इसी प्रकार माया के गुणों के जो—उत्पन्न होना स्थित रहना विलय को प्राप्त होना ये जो व्यापार हैं उनके द्वारा तथा सृष्टि के निमित्त ब्रह्मा बन जाना, रक्षा के निमित्त विष्णु बन जाना तथा संहार के निमित्त रुद्र रूप रख लेना ये जो अनेक रूप हैं इनके द्वारा अनेक से भासित होते हैं, बहुत रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं।

हे जगदीश्वर! यह जो कार्य कारणात्मक जगत् है सद् असद् रूप सम्पूर्ण संसार है, इसमें नाना रूप आपने ही धारण किये हैं। आप ही जगत् हैं और जगत से भिन्न जगदीश्वर परम-पुरुष भी आप ही हैं। जब कार्य भी आप कारण भी आप और कर्ता भी आप ही हैं, तो यह मेरा है यह पराया है, यह जो द्वैत बुद्धि है यह व्यर्थ है, अविद्या है माया है। संसार में यह सिद्धांत है जिसका जिस वस्तु से जन्म होता है, जिसमें स्थिति रहती है, अन्त में जिसमें लीन होता है और जिससे प्रकाश होता है वह उसी का रूप होता है। जैसे वृक्ष कार्य है, बीज उसका कारण है।

बीज से ही वृक्ष बना, बीज ही वृक्ष बनके स्थित रहा, अन्त में वृक्ष का उपसंहार भी बीज में ही हुआ। वृक्ष का प्रकाश भी बीज के कारण ही है अतः वृक्ष बीज ही है। उसी का रूप ही है। जैसे मिट्टी से घड़ा बना। जब तक घड़ा रहा मिट्टी में स्थित रहा अन्त में मिट्टी में ही मिल गया। इसमें मिट्टी ही सत्य है। घड़ा मिट्टी का ही रूप है।

प्रभो ! जैसे मकड़ी जाले में जब तक रहती है उसमें खेलती है, जब निगल लेती है, तो एकाकीपन का आनन्द लेती है। इसी प्रकार आप इस निखिल प्रपञ्च को अपने उदर में समेट कर प्रलयकालीन जल में निरीह होकर एकाकी बनकर आत्म सुख का अनुभव करतेहुए सुखपूर्वक लेट लगाते रहते हैं, तान दुपट्टा सोते रहते हैं। वह सोना आपका साधारण जीवों जैसा सोना नहीं है। संसारी जीवों की निद्रा तो तमोगुण से अज्ञानमयी अन्धकार से ढकी रहती है, किन्तु आपकी निद्रा तो आत्म रूप के प्रकाश से प्रकाशित योगनिद्रा है। उस योगनिद्रा में अवस्थित होकर आप बाह्यदृष्टि को मूँद लेते हैं आप उस समय न जाग्रत अवस्था में ही होते हैं, न स्वप्नावस्था में और न सुषुप्ति अवस्था में ही, उस समय आप तुरीयपद में अवस्थित रहते हैं। उस समय सत्व, रज और तम का खेल समाप्त होकर गुणातीत अवस्था का सुख लेते हैं, उस समय ऊर्ध्वलोक, अधोलोक तथा मध्यलोक इन तीनों का ही विस्तार विलीन हो जाता है आप अपने तुरीयपद वैकुंठलोक में स्थित रहते हैं। न तमोयुक्त होते हैं न विषयों के भोगने वाले अर्थात् तम और और गुणों का योग नहीं करते। उस समय आप अपने विशुद्ध सत्व स्वरूप में निमग्न रहते हैं।

हे विश्वविधायक ! यह जगत् वास्तव में है क्या ? प्रकृति के जो तीनों गुण हैं, वे ही कालशक्ति की प्रेरणा से क्षभित होकर

ब्रह्मांड के आकार में परिणित हो गये हैं, ब्रह्मांड कुछ आपसे भिन्न तो है ही नहीं आपका ही देह है, शरीर है। जब आप निरीह होकर प्रलयकालीन जल में सोते हैं, यह सम्पूर्ण जगत भी आपके ही भीतर चुपचाप पड़ा रहता है। सूखे बीज के समान रहता है। निरन्तर जल की चपेट लगते लगते इसमें कुछ गीलापन हो जाता होगा। सोते समय काल शक्ति प्रहरी का काम करती है। जब आपके जागने का समय होता है, तो काल-शक्ति शनैः शनैः आपके तलुओं को सुहलाती है, शेष की सुखद शैया पर पड़े ही पड़े आप तनिक नयनों को खोलते हैं। काल शक्ति के संकेत को समझकर आप योगनिद्रा रूप समाधि को त्यागते हैं। आप देखते हैं, आपके शरीर में जो नन्हा सा जगत का बीज पड़ा था, वह तो जल लगने से कुछ फूल सा गया है, उसमें से एक नन्हा सा अंकुर उत्पन्न होकर आपकी नाभि द्वारा बाहर हुआ। बाहर होते ही जैसे नन्हा सा वट का बीज विशाल वट वृक्ष बना है उसी प्रकार उसने भी ब्रह्मांड, कमल का रूप धारण कर लिया। उस विशाल नाभिकमल में ब्रह्मा बाबा बैठे थे। इधर उधर दृष्टि दौड़ाते ही चारों दिशाओं में उनके चार मुख हो गये। अब वे आठ नेत्रवाले देव अपनी अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से इस कमल को निहारने लगे उन्हें जिज्ञासा हुई इसका बीज कहाँ है? यह उत्पन्न किससे हुआ है? किन्तु इसको उत्पन्न करनेवाले आप बाह्य दृष्टि से तो दिखायी देते नहीं। ब्रह्माजी ने सब ओर दृष्टि दौड़ायी किन्तु कमल के अतिरिक्त उन्हें कुछ दिखायी ही न दिया। उन्होंने सोचा—"इस कमल से पृथक इसका कोई कर्ता अवश्य होगा। इसका बीज कहीं जल में दूर छिपा होगा, चलूँ, पहिले इसके कारण को खोजूँ। वे जल के भीतर उतरे। सौ वर्ष तक खोजते रहे। वृक्ष से पृथक कहीं बीज हो तो उसका पता मिले भी। कोई भी बीज जब वृक्षरूप में परिणित हो जाता है

तब बीज तो उसी वृक्ष में विलीन हो जाता है। आप उसकी जड़ को कैसे भी देखें कहीं बीज मिलेगा ही नहीं। ब्रह्माजी सौ वर्ष तक डुबकी मारकर खोजते ही रहे, कमल का बीज मिला ही नहीं। कहीं हो, तो मिले। जगत् बीज ही तो ब्रह्मांड कमल हो गया था। अंकुर जब उत्पन्न होता है, तो उसमें बीज भी व्याप्त हो जाता है, कोई चाहे कि अंकुर उत्पन्न हो जाने पर भी हम बीज को देख लें, तो उसका प्रयास निष्फल है। इसीलिये ब्रह्माजी को सौ वर्ष तक ढूँढने पर भी उस ब्रह्मांड कमल के आदि कारण बीज के दर्शन नहीं हुए।

ढूँढ़ते ढूँढ़ते ब्रह्माजी थक गये, शरीर श्रमित हो गया बीज न मिलने पर उन्हें अत्यन्त विस्मय हुआ। अन्य कोई उपाय न देखकर पुनः आकर उसी कमल पर बैठ गये। समाधि लगायी और घोर तपस्या करने लगे। हे प्रभो! चिरकाल तक तपस्या के कारण उनका अन्तःकरण अति निर्मल विशुद्ध बन गया। अब उनके मन में यह बात आई कि बाहर खोजने से कार्य चलेगा नहीं, जो भी कुछ है अपने भीतर ही है। अधिक दौड़ धूप करने की आवश्यकता नहीं, बहुत भटकने से कार्य सिद्धि सम्भव नहीं। यही सोचकर वे और तीव्रतम तप में प्रवृत्त हुए। अब उन्हें अपने ही भीतर अन्तरात्मा में भगवान् के दर्शन हुए। जैसे पृथिवी तो स्पष्ट है, किन्तु उसमें से अति सूक्ष्म गन्ध को पृथिवी से पृथक् करके देखना चाहो तो असम्भव है। इसी प्रकार ब्रह्मा जी का भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण मय जो शरीर है, उसमें अति सूक्ष्म रूप से भगवान् के दर्शन हुए।

हे स्वामिन्! ब्रह्माजी उस रूप के दर्शनों से कृतार्थ हो गये, फिर भी वे विराट् रूप के दर्शनों के इच्छुक थे। आप तो भक्त वाञ्छाकल्पतरु हैं न? आपने बाबा ब्रह्माजी की वह इच्छा भी

पूर्ण की उनको अपने मायामय विराट् रूप के दर्शन कराये। उसमें भाँति भाँति आकृति वाले असंख्यों आनन थे, अनगिनती चरण थे। इतने हाथ थे, कि किसी भी भाँति उनकी गणना असम्भव थी इसी प्रकार उरु, नासिका, वदन, कर्ण तथा नयन थे। भाँति भाँति के चित्र विचित्र आभूषण पहिने हुए नाना प्रकार के आयुधों को धारण किये हुए वे शरीर थे। उस विराट् रूप में चौदहों भुवन प्राप्त थे। माया के कारण अपरिमित अगणित रूपों वाला वह विचित्र रूप था। उस रूप को देखकर ब्रह्माजी के रोम रोम खिल गये, उन्हें परमानन्द प्राप्त हुआ। जिसके लिये वे प्रबल प्रयत्न कर रहे थे उस रूप के उन्हें सहज में ही कमल पर बैठे ही बैठे दर्शन हो गये। ब्रह्माजी ने आपकी अनेक स्तोत्रों से स्तुति की। आपने उनसे वर माँगने को कहा। उन्होंने सृष्टि रचना ज्ञान का वर माँगा आपने उन्हें वेद प्रदान किये।

ब्रह्माजी वेद पढ़ ही रहे थे, कि न जाने कहाँ से दो दैत्य वहाँ आ धमके। प्रथम ग्रास में ही मक्षिका पात हुआ। जैसे क्षीरसागर के मन्थन से पहिले पहिल हालाहल विष उत्पन्न हुआ इसी प्रकार सृष्टि के आदि में भी सर्व प्रथम तमोगुण और रजोगुण के रूप ये दो असुर ही उत्पन्न हुए। वे भी ब्रह्माजी के कान से ही निकल पड़े। भीतर जो रजोगुण तमोगुण भरा था वह कानों द्वारा बाहर आगया। सृष्टि तो बिना रज तम के होती नहीं। सत्वगुण तो शान्त है, वह तो ज्ञान को बढ़ाने वाला है, बुद्धि को बिगाड़ने वाले, ज्ञान को हरने वाले, सृष्टि को बढ़ाने वाले तो रजोगुण और तमोगुण ही हैं। दोनों दुष्ट निकल कर अपने बाप को ही धमकाने लगे। कैसा सृष्टि का विचित्र खेल है। बापको मारकर बेटा उसका आसन लेना चाहता है, वह अपने जनक का ही अन्त करके बढ़ने को उत्सुक होता है। उन

दोनों दुष्टों ने सत्व स्वरूप जो वेद था, पहिले उसी का अपहरण किया, ब्रह्मा बाबा की कठिन परिश्रम से से प्राप्त की हुई सम्पत्ति पर ही सर्वप्रथम अधिकार जमाया। ब्रह्माबाबा कहते ही रहे—अरे, तुम यह क्या करते हो, वेद को मुझपे क्यों छीनते हो, ठहरो सही, बात तो सुनते जाओ, किन्तु वे किसकी सुनने वाले थे। वेदों को लेकर चम्पत हो गये और जाकर समुद्र के जल में छिप गये। अब कमलासन चतुरानन बाबा क्या करते। पुजारी की दौड़ मन्दिर तक। उनको तो एकमात्र आपका ही सहारा था, फिर अन्यप्रभाव में आपकी ही स्तुति करने लगे। आपने ब्रह्माजी को दुखी देखकर दर्शन देते हुए पूछा—"कमलयोनि! क्यों घवड़ा गये, क्यों व्यग्र बने हुए हो।"

ब्रह्मा बाबा बोले—"अजी, महाराज! सभी काम गड़बड़ा गया। रजोगुणी तमोगुणी दो दैत्य वेदों को हर ले गये।" आपने कहा—"कोई बात नहीं मेरा नाम दैत्यारि है, रजतम रूपी असुरों का मैं अन्त कर सकता हूँ, तुम देखो, मेरे ठाठ। हयग्रीव का रूप रखकर अभी पाताल में जाता हूँ, असुरों को मारकर अभी उनसे वेद लाता हूँ।" यह कहकर आप जल के भीतर गये। मधुकैटभ दैत्यों से लड़े। मधुकैटभ को छल से मारकर उनकी मेदा से स्थूल मेदिनी का निर्माण करके सृष्टि का श्रीगणेश कर दिया। वेदों को लाकर ब्रह्मा बाबा को पुनः समर्पित कर दिया। इससे सिद्ध हुआ आपको सत्व अत्यन्त प्रिय है, इसीलिये सत्वगुण को ही आपका परम प्रियतम रूप माना जाता है।

हे प्रभो! आपने हयग्रीव ही अवतार लिया हो, सो बात नहीं। भिन्न भिन्न युगों में विविध कल्पों में आप अनेक अवतारों को धारण करते हैं, ऊँची नीची सभी योनियों में प्रकट होकर दुष्टों का संहार तथा शिष्टों का पालन करते हैं। कभी मनुष्य

बन जाते हैं, राम, कृष्णादि रूप रखकर क्रीड़ा करते हैं। कभी तिर्यक् चार पैर वाले पशु भी बन जाते हैं। पशुओं में भी सूकर बनने में भी संकोच नहीं करते। कभी जटाधारी, लटाधारी, तपस्याव्रतधारी, कपिल, नरनारायण। उपेन्द्रादि रूपों में ऋषि बन जाते हैं, कभी उपेन्द्र बनकर देवताओं उत्पन्न हो जाते हैं कभी जलचर जीवों में कच्छ मच्छ बनकर जल में किलोलें करते फिरते। इस प्रकार नाना अवतार लेकर, विविध वेप बनाकर सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं, तथा सृष्टि के कार्य में जो कंटक होते हैं, उन जगद्‌विद्रोही असाधु असुरों का संहार करके सभी को सुख पहुँचाते हैं।

हे बहुरूपधारी सर्वसमर्थ सर्वेश्वर! आप युग युग में प्रत्यक्ष अवतार लेते हैं अपने अनुगत अनुचरों को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। सत्ययुग, त्रेता, और द्वापर इन तीनों युगों में तो प्रत्यक्ष अवतार लेकर सबके देखते देखते धर्म की रक्षा करते हैं। किन्तु कलियुग में तो गुप्तरूप से ही रहते हैं। आपको सर्व साधारण पहिचान नहीं सकते देख नहीं सकते। इस युग में आप छिपे ही छिपे प्रच्छन्न भाव से सृष्टि के रक्षण कार्य को करते रहते हैं। सृष्टि की रक्षा आपके ही द्वारा होती है। तीनों युगों में प्रत्यक्ष होने के कारण आपके अनेक नामों से एक नाम 'त्रियुगी' भी है। त्रियुगीनारायण बनकर आप सृष्टि रक्षण कार्य में संलग्न रहते हैं। ऐसे सत्य स्वरूप त्रियुगनारायण के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार प्रह्लादजी ने जगत् और जगदीश्वर के सृष्टि कार्य को बताते हुए उनकी स्तुति की। अब आगे जैसे वे अपने दुष्ट मन की प्रबलता बताते हुए उसे

भगवान् के चरणों में लगाने की विनती करेंगे, वह कथा प्रसङ्ग आगे कहा जायगा।"

छप्पय

सब संसार समेट पेट में सुख तें सोओ।
कालशक्ति पद पदुम पलोटे तब तुम जोओ॥
कमलनालतें भये प्रकट अज पार लगायो।
भये निरत तप माहिँ पार जब बीज न पायो॥
हिय में प्रकटे प्रेमवश, पुनि विराट दरशन करत।
धरम हेतु जग पालि प्रभु, नाना अवतारनि धरत॥

पद

करता करम करन तुम नरहरि।
वृक्ष बीज बनि जावै जैसे, बने जगत करुना करि॥१॥
प्रलय पयोधि प्रमवे पौढ़े, उदर माहिँ सब जग धरि।
काल पाइ तब नाभिकमलतैं, प्रकटे अज भूतनि भरि॥२॥
खोजत थके मिले हिय भीतर, बनि विराट तुम मधु-अरि।
जो जो शरन चरन की आये, ते प्रभु अवसि गये तरि॥३॥

प्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति [६]

(५७)

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ !
सम्प्रीयते दुरित दुष्टमसाधुतीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तम्,
तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥*

(श्रीभा० ७ स्क० ९ अ० ३९ श्लो०)

छप्पय

यह मेरो मन मलिन मोहमय कामातुर नित ।
कथा माहिँ नहिँ लगे भगे भोगनि में उतइत ॥
तव चिंतन कस करूँ अधिक इन्द्रिय दुख देवें ।
जैसे पत्नि अनेक कष्ट दै दै पति सेवें ॥
भव वैतरनी महँ पड़े, भगवन् ! भटकें भूतगन ।
मोह मगन जनमें मरें, पार करो करुना अयन ॥

मन की स्वाभाविकी प्रवृत्ति विषयों की ओर आकृष्ट होने की है और विषयों में इतनी मोहकता है कि वे हठात् मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। जब चोर और कुनिया दोनों

---

* स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे वैकुण्ठनाथ ! मेरे मन की प्रीति आपकी कथाओं में नहीं होती। यह मन बड़ा ही दुष्ट है, अत्यन्त ही असाधु है, बहुत ही तीव्र है। काम के लिये सदा आतुर बना रहता है तथा हर्ष, शोक, भय, पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा आदि कामनाओं से व्याकुल बना रहता है। अब आप ही बतावें ऐसे अधम मन से मैं दीन हीन आपकी गति का कैसे विचार कर कर सकता हूँ।"

स्त्री मिल गये तब तो गृहपति की वस्तुएँ अवश्य ही चोरी चली जायँगी। जिसे प्रहरी बनाकर घरके द्वार पर नियुक्त किया था और जिससे आशा की थी, कि चोर के आते ही वह उसके विरोध स्वरूप उग्रता प्रकट करेगी, किन्तु उग्रता करनेकी बात तो पृथक् रही स्वयं चोरों के सम्मुख पूँछ हिलाने लगी, उनके डाले हुए टुकड़ों को खाकर उन्हीं की हाँ में हाँमिलाने लगी तब तो बात बिगड़ेगी ही। इसी प्रकार जब मन विषयोंमें फँस जाता है, इन्द्रियों को विषयोंमें प्रवृत्त करता है और विषय इन्द्रियों में समा जाते हैं तो उस समय मन असमर्थ हो जाता है तब तो भगवान् ही एकमात्र रक्षा कर सकते हैं, स्तुति प्रार्थना का ही एकमात्र बल अवशेष रह जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की भक्तवत्सलता का वर्णन करने के अनन्तर अब प्रह्लादजी अपने मनको सत्पथ में लगाने के लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हुए निवेदन कर रहे हैं। वे कहते हैं—"हे प्रभो! मेरे इस मनका एकमात्र कार्य है आपकी कथा का सदा चिंतन करता रहे। कानों से आपके सुमधुर नामों का गुणों का श्रवण करे। नेत्रों से आपकी छविका-आपके दासोंका-दर्शन करे, जिह्वासे आपके प्रसादका आपके चरणामृत का आस्वादन करे, नासिका से आपके चरणों में चढ़ाई तुलसी को सूँघे, त्वचासे आपकी प्रसादी मालाका आपके निर्माल्य का स्पर्श करे, हाथों से आपकी सेवा करे, चरणों से आपके पुण्य क्षेत्रोंमें जाय। यह मन और उसके अधीन इन्द्रियों का काम है, किन्तु यह मेरा मन ऐसा दुष्ट है, कि आपकी कथामें लगता ही नहीं। कथा कीर्तनका नाम सुनते ही घबड़ा जाता है, नाच गान आदि सरसता की बातें होंगी, ग्राम्यगीत तथा विषय वार्ता होंगी तो उनमें तो ऐसा तन्मय हो जयगा, किन्तु जहाँ कथा की बात आई इसे पल पल भारी पड़जायगा वहाँ से उठ

कर भागने ही लगेगा। इधर उधर भटकता ही रहेगा। यह ऐसा दुष्ट हो गया है, कि इसे अपने भले बुरे का विवेक नहीं। ऐसा दोष दूषित हो गया है, कि दुर्गन्ध की ही ओर दौड़ता है। ऐसा कामातुर बन गया है कि सदा सर्वदा विषयोंका ही चिन्तन करता रहता है। ऐसा विक्षिप्त हो गया है, कि अनुकूल भोग मिलने पर हर्षित हो जाता है,प्रतिकूल वेदना प्राप्त होनेपर शोकातुर हो जाता है, विषय प्राप्तिमें आघात न पड़े इसके लिये सदा भयभीत बना रहता है। मुझे धन मिले, स्त्री मिले, मेरे बाहरी शत्रुओंका नाश हो, धन वैभव विषय सुख मिले। परलोकमें भी यही विषय भोग दिव्य बनकर प्राप्त हो इन्हीं एषणाओं के लिये व्याकुल बना रहता है। भगवन्! इस विषयासक्त मनने मुझे अत्यन्त कृपण दीन बना रखा है, अब आप ही बतावें ऐसे चारों ओर विषयवन में भटकने वाले मनसे मैं आपके विशुद्ध सत्वमय स्वरूप का चिन्तन भला कैसे कर सकता हूँ ?

इस मन ने इन्द्रियों को ऐसा पढ़ा लिखा रखा है कि इन्द्रियाँ मेरी बात मानती नहीं। वे मुझे अपनी ओर बलपूर्वक खींचती हैं। रसना ने कहा-रसगुल्ला खाओ। अच्छा एक बार उसकी बात मानली। अब वह ज्यों ज्यों खाती है त्यों ही त्यों अतृप्त बनती जाती है, उसकी कभी तृप्ति ही नहीं होती, नित्य नये स्वाद चखने को व्यग्र बनी रहती है और मुझे रसीले, सरस पदार्थों को खानेके लिये उकसाती रहती है। उपस्थेन्द्रिय नित्य नया स्पर्शानुभव करने को लालायित रहती है, आँखे रूपकी ओर ललचायी दृष्टिसे देखने को आकुल रहती हैं। त्वचा कहती है मुझे मृदुल गुद गुदे, सुखद कोमल स्पर्श चाहिये। तब तक पेट कहता है, मेरा गड्ढा भरता ही नहीं। दिनमें आठबार खालो तो भी यह खालीका खाली ही बना रहता है, ऐसा दुष्पूर यह गड्ढा है। कर्ण कहते हैं कुछ तान टप्पा सुनवाओ कोई सरस

गाना सुनवाओ कोकिल वैनी के कल कूजित कंठ से मेरे कुहर को भरदो। देखने में कान के छिद्र छोटे होते हैं, किन्तु सरसता की बातें सुनते सुनते अघाते नहीं। घ्राण कहती है मुझे तो दुर्गन्ध भाती ही नहीं सदा सुगन्धि ही चाहिये टटके पुष्पोंकी कामिनी के केशपाश में पड़े सुगन्धित पदार्थों की अंगरागकी, सुखद सुरभि तथा गन्ध सदा चाहिये। कर्मेन्द्रियाँ कहती हैं, विषय भोगोंकी ही ओर भागो; उधर ही प्रयाण करो, उन्हें ही प्राप्त करो। अब आप ही बताइये मैं अकेला ये डाँइनें इतनी, मैं सब की इच्छा कैसे पूरी कर सकता हूँ। कोई किसी ओर खीचती है कोई दूसरी ओर जैसे की बहुत सी स्त्रियाँ हों वे अपने निर्बल पतिको मिलकर पकड़ लें;कोई कान पकड़ कर कहे पूर्वकी ओर चलो, कोई हाथका झटका देकर कहे नहीं पश्चिम की कोठरी में चलना होगा, कोई चोटी पकड़ कर ऊपर की ओर घसीटे। जैसे उस निर्बल पतिकी उन सौतोंके फंदेमें फँसकर दुर्गति होती है वैसे ही मेरी भी इस विषयासक्त मन के वशमें रहने वाली इन्द्रियों के कारण हो रही है, हे सब समर्थ प्रभो! मेरी इस दुःख से रक्षा करो। हे उत्तमश्लोक! मेरा उद्धार करो। हे दयानिधे! दया करो, हे कृपा के सागर कृपा करो।

हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप प्रभो। ये जीव भवसागर में पड़े गोते खारहे हैं, विषयवन में इधर उधर भटक रहे हैं, संसार रूप वैतरणी में फँसे हुए क्लेश पारहे हैं। नानायोनियों में कर्मानुसार पड़े हुए विपत्तियों को भोग रहे हैं, रागद्वेष के पंकमें फँसे एक दूसरे से ईर्ष्याकर रहे हैं, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हुए खानपानादि के कारण कातर बने हुए हैं। कुछ अपने पक्षके अपने स्वार्थ साधक मिल जाते हैं उनसे अनुराग करते हैं, मित्रता दिखाते हैं, प्रतिकूल स्वभावके विपक्षियों से सदा द्वेष करते रहते हैं, उनके अनिष्ट की सदा

चिन्ता में निमग्न रहते हैं। राग, द्वेष, इर्ष्या तथा विद्वेष के कारण सदा जलते ही रहते हैं। हे दया सिन्धो! आप इन दीनों पर दया दरसाइये। हे करुणासिन्धो! इन कुत्सित कामियों के ऊपर कृपा कीजिये। दुःख पाते हुए वैतरणी के पंक में फँसे प्राणि वर्ग को पार पहुँचा दीजिये, इन अनाथ और अज्ञ जीवों की रक्षा कीजिये। इन भूले भटके लोगों को पुण्य पथ दिखाइये।

हे जगत गुरो! आप चाहें तो आप के लिये कोई असंभव नहीं। जो कारावास में डाल सकता है वही चाहे तो मुक्त भी कर सकता है, जो खिलौना बना सकता है, वह उसे बिगाड़ भी सकता है, वह उसे नष्ट भी कर सकता है, जो दण्ड दे सकता है वह क्षमा भी कर सकता है। आप ने ही तो इस जगत को बनाया है, आप ही विष्णु बनकर नाना अवतार रख-कर इसका पालन करते हैं और आप ही अन्त में रुद्र रूप रख-कर संहार भी कर डालते हैं। आप सर्व समर्थ हैं, फिर आप को इन सब को पार लगाने में क्या प्रयास होगा? आप कहेंगे आप को ऐसा कौन सा परिश्रम पड़ेगा? ये लोग इस योग्य नहीं, कृपा के पात्र नहीं अनुग्रह के अधिकारी नहीं, दया योग्य दिखायी नहीं देते। सो यदि भगवन्! आप पात्रों को ही तारते हों तो फिर आप की दयालुता कहाँ रही? दया के विशेष पात्र तो ये अज्ञ मूढ़ जन ही हैं, कृपा तो अकिञ्चन अज्ञों पर ही करनी चाहिये। महापुरुषों की अनुकम्पा तो अधम पुरुषों पर ही होनी चाहिये।

स्वामिन्! आप सोचते होंगे, मैं अपने लिये ही इतनी प्रार्थना कर रहा हूँ। सो, नाथ! मुझे अपनी तो उतनी चिन्ता नहीं। मेरे सिर पर तो आप ने अपना वरद हस्त कमल रख ही दिया है, मैंने तो आप का दासत्व स्वीकार कर ही लिया है और आप ने भी मुझे अपना करके अपना ही लिया है। अपनी प्राप्ति का पथ

दर्शा ही दिया है, हम दासों के लिये आप की तनिक सी कृपा ही यथेष्ट है, विशेष कृपा के पात्र तो ये मूढ़ जन ही हैं। और मेरी बात तो भगवन्! यह है, कि मैं इस संसार की भयंकरता से तनिक भी नहीं डरता। यह वैतरणी की कीच अन्य लोगों के लिये चाहे कितनी भी क्लेश कारिणी भले ही हो, दूसरे लोग इसे पार करना दुष्कर तथा कठिन भले ही मानते हों मुझे खिलवाड़ सी लगती है। मेरा चित्त तो आप के गुणगान रूप कथामृत में निमग्न रहता है। अमृत के सम्मुख भीति रह नहीं सकती। मैं तो आप की कमनीय कथा सुनते सुनते मुख से आप के सुमधुर मंगलमय नामों को लेते लेते अनायास ही बिना श्रम के ही सहज में तर जाऊँगा। मुझे चिन्ता इन संसारी लोगों की है, जो पैसा को ही सच कुछ समझते हैं प्रेयसी के पीछे ही व्याकुल बने रहते हैं, विष्ठा मूत्र कफ खखार के दुर्गन्ध युक्त घिनौने देह को दूसरी ऐसी ही घृणित देह में सटाकर सुख का अनुभव करते हैं जो सदा सर्वदा विषयों में ही व्यग्र बने देशविदेशों में घूमते रहते हैं नीच से नीच कार्य करके भी स्त्री पुत्र आदि परिवार वालों का पालन पोषण करते हैं। फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं होता, छल, कपट, दम्भ पाखंड तथा असत्य के द्वारा धनोपार्जन करके भी निरन्तर क्लेशों का ही सामना करते रहते हैं, जो कथा कीर्तन से विमुख रहकर शिश्नोदर परायण बने रहते हैं ऐसे मूढ़ों की ही मुझे अत्यधिक चिन्ता व्याप्त है, उन्हीं के दुःखों के कारण मैं दुखी बना रहता हूँ। जो अज्ञ पुरुष शब्द, रूप, रस, गंध तथा स्पर्शादि सांसारिक विषयों से व्याप्त रहते हैं तथा इन्द्रियों के इन भोगों को उपलब्ध करने में सतत प्रयत्नशील बने रहते हैं। इन अनित्य क्षण भंगुर नाशवान् मायिक सुखों के लिये परिवार के भरण पोषण के निमित्त पागल बने रहते हैं, उन्हीं का किसी प्रकार

उद्धार हो उन्हींकी बुद्धि कथा कीर्तन में कैसे भी लगे इसी की मुझे सबसे अधिक चिन्ता है।

आप कहेंगे कि इसे तो ऋषि मुनि साधु सन्त करेंगे ही तुमको व्यर्थ में बैठे बिठाये शिरः पीड़ा मोल लेना है? भगवन्! बात तो सत्य ही है, काम तो परोपकारी साधु सन्तों का ही है, किन्तु प्रायः करके देखा गया है, साधु सन्त इन कार्यों से दूर ही रहते हैं। साधना भी करेंगे तो ऐसे घोर वनमें जहाँ कोई पहुँच न सके। बैठेंगे भी तो ऐसी छोटी सी गुफामें जहाँ किसी दूसरे को बैठने योग्य स्थान ही न हो। जप भी करेंगे तो मन ही मनमें कोई सुन न ले। चिन्तन भी करेंगे, तो आँख मींचकर। पेट भी भरेंगे तो माँगकर एकान्तमें वाणीको भी रोक रखेंगे, कि कोई भूला भटका वहाँ पहुँच भी जाय तो दो उपदेश भी सुनले। उन्हें अपने शरीर निर्वाहके लिये कुछ कहना भी होगा तो संकेत से ऊँ ऊँ करके। लिखना भी होगा तो मुझे अन्न देजाना, वस्त्र देजाना, दूध फल देजाना यही लिख देंगे। इस समस्त साधना का फल क्या? मैं अकेला मुक्त हो जाऊँ, भवबन्धन से छुट जाऊँ, मेरा पुनः जन्म न हो। मुझे मातृ उदर में आना न पड़े। बस,जो भी कुछ हो मेरे लिये ही हो। वे ऐसे गंगातट आदिके परम पावन स्थानों में नहीं रहते जहाँ सर्व साधारण जिज्ञासु सुगमता से पहुँचकर उनकी साधना से कुछ प्रेरणा प्राप्तकर सकें। उनके पास कोई सुरक्षित स्थान या सघन वृक्षावली नहीं होती जहाँ संसारी तापसे संतप्त प्राणी घड़ी दो घड़ी बैठकर शान्ति प्राप्तकर सकें। वे सबके साथ मिलकर भगवान के परमपावन सुखमय, आनन्दमय,जगत हितकारी भवभयहारी सकल संतापहारी मधुमय भगवन्नामों का तन्मयता से संकीर्तन नहीं करते, जिसमें स्वयं भी तरजाय और साथ ही साथमें कीर्तन करने वालों को भी तार ले जायँ।

वे स्वयं भले ही तर सकते हों, किन्तु वे तरन तारन नहीं। वे सबके साथ बैठकर घुल मिलकर रस ले लेकर आपकी कथा नहीं सुन सकते। किसी रसिक भक्तके मुखसे बहुत से भक्तोंके साथ आनन्दाश्रु बहाते अनुराग भरित हृदय से जन्म मंगलकारी संसार सागरको समूल शोषण करनेवाली आपकी कथाओं द्वारा सबको सत्संग लाभ नहीं करा सकते। सबके साथ मिलकर भगवान् का भोग लगा हुआ दिव्य प्रसाद नहीं पा सकते। पूरी शक्तिसे मुक्त कंठ होकर आपके नामों गुणों का गान नहींकर सकते। वे आपके जगतपावन चरित्रों को लिखकर सर्व साधारण के लिये प्रकाशित नहीं करा सकते जिससे जो जहाँ बैठा हो वहीं उन उत्तम परम पावन चरित्रों को प्रेम पूर्वक पढ़ सके और कथा रसमें निमग्न हो सके। सारांश यह है, कि वे ऐकांतिक साधना वाले मुनि गण परार्थ निष्ठामें अनुष्ठित नहीं होते, परोपकार रत नहीं होते अन्य मूढ़ जनोंके हितमें तत्पर नहीं रहते, किन्तु प्रभो! मैं ऐसा ऐकान्तिक साधक नहीं बनना चाहता। इन सब भूले भटके अज्ञ पुरुषों को छोड़कर अकेला मुक्त बनना नहीं चाहता। इन सब दीन हीन कृपणों का परित्याग करके मुझेः अकेले मुक्तहोने की लालसा नहीं। इस पर आप कह सकते हैं, कि तुम इन सबको मुक्त करना चाहते हो, तो कोई साधन खोजो, किसी अन्य समर्थ पुरुष का द्वार खटखटाओ। सो, प्रभो! आपके समान कोई अन्य समर्थ दृष्टिगोचर होता भी नहीं। आपके अतिरिक्त इस भवसागर में भटकनेवाले भ्रमित व्यक्तियों को कोई पार पहुँचा भी नहीं सकता। आपसे पृथक इनका कोई अन्य उद्धारक दृष्टिगोचर भी नहीं होता। अतः जैसे बने तैसे सभीका उद्धार करें, सभी को पार लगादें, सभीको पुण्यपथ दर्शादें, सभीको कुशल और निर्भय बनादें। सभीको भक्ति रसका

आस्वादन करादें। सभीको अपने पाद पद्मोंकी अहैतुकी भक्ति प्रदान करदें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस परोपकार रत साधना की मुख्यता बताते हुए प्रह्लादजी ने सबके हितकी कामना नृसिंह भगवान् से की। अब आगे जैसे साधनामें इन्द्रियजित होना अत्यावश्यक है इस प्रसंग को बताते हुए स्तुति करेंगे उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

सब समर्थ सरबेश दुखिनिकूं सुखी बनावें।
हम तो तुमरे दास कथा सुनि मुनि तरिजावें॥
मुनि जन अति ऐकान्त वैठिवनध्यान लगावें।
स्वयं मुक्तिके हेतु दीन दुखियनि बिसरावें॥
तजि इन दुखियनि दुखित नहि, चहूँ अकेले मुक्तिपद।
प्रभु जो चाहें करि सकें, सबविधि केवल तुम सुखद॥

पद

स्वामिन्! सबकूँ सुखी बनाओ।
दुखी जीव भव भटकि रहे हैं, प्रभुजी पार लगाओ॥१॥
मन नहिं सुने कथा विप चाखे, करननि विषय बचाओ।
राग द्वेष वश विवश नरनिकूँ, निज गुन अमृत चखाओ॥२॥
हैं अधिकारी अधिक अज्ञ जन, पद छायामें लाओ।
जो विपयनि में अति सुख मानत, नहिं तिनकूँ बिसराओ॥३॥
मुनिजन वनमें मनकूँ रोके, जगजीवो मरि जाओ।
मुक्ति न चाहूँ नाथ अकेलो, सबनि संग पहुँचाओ॥४॥

प्रह्लाद-कृत नृसिंह स्तुति(७)

(५८)

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छम् ,
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहु दुःख भाजः ,
कण्डूतिवन्मसिजं विषहेत धीरः ॥*॥

(श्री भा० ७ स्क० ९ अ० ४५ श्लो०)

छप्पय

का सुख मैथुन माहिं खाजकी खुजली ऐसे ।
सुख-सो पहिले लगे दुःख ही दुख पुनि जैसे ॥
मौन, धरम, अध्येन, वेद, ब्रत, श्रवन, समाधी ।
जप, तप, व्याख्या शास्त्र मोक्ष दें संयम साधी ॥
इन्द्रिय लोलुप जीविका, साधन इन ही कूँ करें ।
पाखण्डी करि दम्भ तैं, करें जीविका कहुँ गिरें ।

जीव जिन विषय भोगों को सुख समझे बैठा है, वे परिणाम में दुखद हैं, इसे नित्य अनुभव करता हुआ भी जीव इन्हें छोड़ नहीं सकता। इनसे उपराम नहीं हो सकता, इनकी ओर से

---

* स्तुति करते हुए प्रह्लाद जी कह रहे हैं—प्रभो ! जैसे दाद आदि खुजली पहिले खुजलाने में तो कुछ सुख होता है किन्तु अन्तमें, उनसे

पराङ मुख नहीं बन सकता। मायेश को माया है, यही लीलाधारी की लीला है, जब वे ही कृपा करें तभी छुटकारा संभव है, वे ही जब अपनी ओर हठ पूर्वक खींचें तभी विषयों से हट कर उन हरि की ओर बढ़ सकता है वे कब कृपा करेंगे इसे भी उनके अतिरिक्त अन्य कोई जान भी तो नहीं सकता।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुये प्रह्लाद जी कहरहे हैं—"प्रभो! यह प्राणी अधिक की आशा से तनिक सुखाभास के पीछे कितना कष्ट सह रहा है। सूखे पेड़ के नीचे कोई बहेलिया खड़ा है। बैशाख जेष्ठ की दोपहरी है नीचे से बालू जल रही है ऊपर से सूर्य देव तप रहे हैं। उस सूखे पेड़ पर मधु मक्खियों का एक छत्ता है, उसमें उसने मधु के लोभ से नीचे से ही लकड़ी चुभोदी। छत्ते से मक्खियाँ उड़ कर उसके शरीर को काटने लगीं, किन्तु साथ ही एक एक बूँद करके मधु भी टपकने लगा। उन मधु विन्दुओं के स्वाद के पीछे वह ऊपर नीचे की उष्णता भी सहता है, मक्खियों के काटने को भी सहता है। सम्पूर्ण शरीर से स्वेद चू रहा है, अंग प्रत्यंग संतप्त हो रहा है, किन्तु तनिक से जिह्वा सुख के पीछे वह सभी क्लेशों को सहता है, वह जिह्वा का सुख भी स्थायी नहीं क्षणिक है। मधु के विन्दु जहाँ जिह्वा से नीचे गये दुर्गन्ध युक्त

अधिकाधिक दुःख ही बढ़ता है, उसी प्रकार गृहस्थियों के जो मैथुनादि सुख हैं क्षणभर को तो उनसे सुख मिलता है, किन्तु परिणाम दुःख ही होता है, इसी प्रकार ये सभी भोग अत्यन्त ही तुच्छ हैं। किन्तु ये संसारी कृपण जन विविध भाँतिके दुःख उठाते रहने पर भी तृप्ति का अनुभव नहीं करते। हाँ कोई धीर पुरुष इन नेत्रोंको सहन करके सुखी होता है।

कुछ असुविधा प्रतीत होती है किन्तु अन्त में सुख ही सुख है। फिर न छर छराहट उठती है, असह्य पीड़ा ही होती है। किन्तु उस खुजलाहट के वेग को सहन करना वहाँ हाथ को न जाने देना यह भी तो अत्यंत साहस का काम है उस साहस को हे मेरे श्यामसुन्दर! तुम ही दे सकते हो। नहीं तो ये विषय गर्त में फँसे दीन जन तो इस खुजलाहट से सदा अतृप्त ही बने रहते हैं। इसे रोकने के जो शास्त्रीय उपाय भी करते हैं वे भी इन्द्रियों पर अधिकार न होन से विपरीत ही फल देनेवाले होते हैं। फल तो भावना अनुसार होता है, एक सा ही काम करने वाले, एक समान ही चेष्टा करने वाले दो व्यक्तियोंके भाव भेदके कारण फलमें भी विपरीतता देखी जाती है। वस्तु एक होने पर पात्र भेद से परिणाम भेद देखा गया है। वर्षाका जल एकही है, वह यदि गंगादि नदियों में पुष्करादि सरोवरों में गिरता है तो पीने योग्य मीठा हो जाता है वही समुद्रमें पड़ता है, तो अपेय खारी बन जाता है यही बात साधनों के सम्बन्ध में है। साधन एकही है उसे इन्द्रियजित संयमी करता है, तो उससे मुक्ति मिलती है असंयमी अजितेन्द्रिय करता है, तो उसकी जीविका का साधन बन जता है, और दंभी करता है तो कहीं तो उसका दंभ पाखण्ड चल जाता है तो कुछ संसार काम चल जाता है, कहीं दम्भ खुल गया तो कुटाई भी होती है। इससे साधन में इस मन पर निग्रह करना सबसे अधिक आवश्यक माना गया है। जब तक इन्द्रियाँ वशमें नहीं तब तक केवल साधनों से काम नहीं चलता।

अब जैसे मौन व्रत ही है यदि इस व्रत को इन्द्रिय जित संयमी शुद्ध भाव से करे तो उस का मन संसारी विषयों से हट कर भगवान् में लगेगा और वह मुक्ति का अधिकारी होगा। किन्तु उसे अजितेन्द्रिय विषय लोलुप करे, तो लोग कहेंगे, चलो, जैसा

भी कुछ है कुछ न कुछ कर ही रहा है इसे भोजन तो देही दो। इस मौन से उसकी आजीविका चल जायगी। अब एक तीसरा दम्भी है, उसने देखा मौनी रहने से तो लोग बड़े प्रभावित होते हैं, अच्छे अच्छे माल खाने को मिलते हैं, लाओ हम भी अपने को मानी घोषित करदे। दो चार सिद्ध साधक मिलकर चल दिये, एक को झूठे ही मौनी घोषित कर दिया। ५० वर्ष से ये मौन रहते हैं, बड़े सिद्ध महात्मा हैं किसी की ओर देखते तक नहीं। इनका मन से ही आशीर्वाद फलता है इन्हें धर्मशाला बनवानी है। कुछ द्रव्य चाहिये। कुछ लोग प्रभाव में आकर धन दे देते हैं। लेकर चले जाते हैं वहाँ दंभ मौन से इनका काम चल गया। कहीं दूसरे स्थान पर गये। किसी चतुर ने ताड़ लिया। छिपकर सुनता रहा। जो दिन में ५० वर्ष का मौनी सुनता था वह तो रात्रिमें अपने साथियों से चुपके चुपके बातें कर रहा है। दस बीस युवक आये मौनी बाबाको तथा उनके साथियों के आगे डंडाओंसे पूजा करके निकाल दिया। यहाँ दम्भ से कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ उल्टे मार पड़ी। इसी प्रकार मोक्षके अन्य साधनों के सम्बन्ध में भी है।

अब जैसे कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत ही हैं इन्हें यदि जितेन्द्रिय करेंगे तो उनका अन्तःकरण शुद्ध होगा इससे वे मोक्ष के अधिकारी बनेंगे। अजितेन्द्रिय पुरुष प्रसिद्धि के लिये करेंगे, तो ऊपर से तो व्रत करते रहेंगे भीतर ही भीतर सोचते रहेंगे, कब व्रतके दिन पूरे हों और कब हम सुंदर से सुंदर स्वादिष्ट पदार्थ खायें। वे सब पर अपने व्यवहार से अपने व्रतकी धाकभी जमाते रहते हैं ऐसे अजितेन्द्रिय पुरुषों को इसी लोक में पैसा प्रतिष्ठा का लाभ भले ही हो जाय मोक्ष का साधन वह व्रत नहीं बन सकता दम्भियों का यदि दावलग गया, तो मिथ्या व्रतके नाम पर कुछ

जोड़ लेंगे पोल खुल गयी तो केवल कायक्लेश और अपमान ही हाथ लगेगा।

इसी प्रकार वेद का अध्ययन जितेन्द्रिय करेंगे तो उससे उन्हें ज्ञान होगा, ज्ञान से मुक्ति होगी। अजितेन्द्रिय करेंगे तो वेद विक्रय करके यज्ञयागादि कराकर दक्षिणा प्राप्त करेंगे दंभी वेद के नाम पर करें यदि भाग्यवश निशाना लग गया तो तीर का कामदे जायगा, नहीं तो तुक्का बना बनाया ही है। यही बात शास्त्रों के श्रवणके सम्बन्ध में भी है। जितेन्द्रिय शास्त्रश्रवण करके मनके निदिध्यासन द्वारा ब्रह्मसाक्षात् कार करेंगे। अजितेन्द्रिय श्रवण के नाम पर व्यापार चलावेंगे। दम्भियों की सिद्धि संशय ग्रस्त है कभी कुछ मिल भी सकता है कभी कोरे भी रह सकते हैं। तपस्या की भी यही दशा है जितेन्द्रिय करेगा, तो तपसा चीयते ब्रह्म" तपस्या से ब्रह्म साक्षात् कार होगा, अजितेन्द्रिय तपके द्वारा संसारी या स्वर्ग के सुख भोग सकतेहैं, दम्भियोंके दाल गल गयी तो तप के नाम से लोगों को ठग लेंगे कलई खुल गयी, तो मार के दक्षिणा प्राप्त करेंगे। स्वधर्म पालन जितेन्द्रिय पुरुषों के लिये मुक्ति मार्ग में सहायक है, अजितेन्द्रिय करें तो उन्हें इसी लोक में उसका फल मिल जायगा और किन्तु दम्भियों को परलोक में तो कुछ मिलेगा ही नहीं। इस लोक में घनाभर के घी मिल सकता है कभी मुठ्ठी भर चना कभी वह भी मना।

शास्त्रों की विशद व्याख्या करके लोगों पर वाणी द्वारा लेखनी द्वारा निष्काम भाव से प्रकट करने पर मोक्ष निश्चित है यदि करने वाले काम लोलुप न होतो अजितेन्द्रिय व्याख्या द्वारा पैसा पैदा कर लेंगे और दम्भी सदा संदिग्ध बने रहेंगे। एकान्त वास जितेन्द्रिय पुरुषों को मुक्तिपद प्राप्त कराता है, अजितेन्द्रिय प्रतिष्ठा पा सकते हैं। दम्भी लोग दूसरों को लूट भी सकते हैं और कारा

वास भी जा सकते हैं। जप संयम द्वारा मुक्ति दिला सकता है। असंयमीका व्यापार बढ़ा सकता है, दम्भी का जप कहीं कार्य कर जायगा कहीं व्यर्थ सिद्ध होगा। यही बात समाधिके सम्बन्ध में है यम नियम पूर्वक लगायी गयी समाधिसे ब्रह्म साक्षात् कार होता है असंयमी समाधिका अभ्यास करले तो नट विद्या दिखा कर पारितोषिक पा सकता है और ढोंगी समाधिका दम्भरचे तो कभी सीधे सादे लोग फँस भी सकते हैं और कभी हनुमानजी जैसा कोई मिल गया तो कालनेमिकी भाँति पूजा भी कर सकता है।

इस प्रकार हे प्रभो! इन सभी उदाहरणों से यही सिद्ध हुआ कि इन्द्रियोंको वशमें करना सभी साधनों के लिये अत्यावश्यक है। वेद ने आपको सत् असत् कार्य कारण तथा बीज और अंकुर के समान बताया है। जैसे आप सत्य स्वरूप से यह असत् संसार हो गया है, जैसे बीज से वृक्ष बन जाता है यही दृष्टान्त पूर्ण नहीं आपतो अरूप है, आपका तो कोई रूप हो ही नहीं सकता किन्तु यदि ऐसे न बतावें तब तो आपके सम्बन्धमें कुछभी कहा ही नहीं जासकता। इन दृष्टान्तों को छोड़कर आपके ज्ञानका अन्य साधन दृष्टिगोचर ही नहीं होता। योगीजन भक्तियोग के द्वारा सद् असत् स्थूल सूक्ष्म तथा कार्य कारण इन दोनोंमें ही आपको अन्वेषण करलेते हैं, आपका साक्षातकार करते हैं जैसे काष्ठ में छिपी अग्नि को मंथन द्वारा प्रकट करलेते हैं। काष्ठमें अग्नि को कहीं से लाते नहीं हैं। दोनों अरणियों में प्रथम से ही अग्नि व्याप्त थी, केवल मन्थन क्रिया से वह प्रत्यक्ष की गयी। इसी प्रकार आपभी सर्वत्र व्यापक हैं आपके बिना इस स्थूल जगत की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। आपसे पृथक कार्य कारण इन दोनों की सत्ता ही नहीं। केवल भक्तिरूप

ही न पहुँचे किन्तु पथ तो प्रशस्त कर ही सकता है, उपासना द्वारा भगवत् भक्ति द्वारा उनके द्वार तक तो पहुँचा ही जा सकता है। वहाँ पहूँचने पर तो फिर जीव को अपने आप कुछ भी करना न पड़ेगा, आगे तो स्वयं साक्षात् प्रभु ही आकर अपने धाम में अन्तःपुर में ले जायँगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की स्तुति का उपसंहार करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे प्रभो! हे भूमन्! आप अरूप का कोई एक रूप स्थिर तो किया नहीं जा सकता। जब आप ही इस संसार महीरुह के आदि बीज हैं, आपने ही जब वृक्ष का रूप रख लिया है, तो संसार में जो भी कुछ दिखायी देता है, सब आपका ही रूप है। यह जो वृक्ष पर्वतों वाली समस्त पृथिवी है आपका ही रूप है। समुद्र, नद, नदी, तालाव, कूप, तथा सभी प्राणियों के शरीर में जो जल है, सब आपका ही स्वरूप है। सूर्य में चन्द्रमा तथा अग्नि और जलमें जो तेज है वह आपका रूप है। सर्वव्यापक वायु तथा अवकाश में व्याप्त आकाश आपका ही स्वरूप है। प्रभो! श्रवण से सुना जाने वाला शब्द आपका ही रूप है। नेत्रों से देखे जाने वाले रूप आपके ही स्वरूप हैं। रसना से अनुभव किये जाने वाले रस आप ही हैं। घ्राण से सूँघे जाने वाले गन्ध आप ही हैं। त्वचा से अनुभव किये जाने वाली स्पर्श तन्मात्रा आप ही हैं। प्राण अपानादि दश भेदों से शरीर में व्याप्त होने वाले प्राण आप ही हैं। कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय भी आपका ही रूप है। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार चतुर्विध अन्तःकरण आप ही हैं। अधिक कहाँ तक गिनावें जो सगुण है, निर्गुण है, जो मन से इन्द्रियों से जाना सुना तथा अनुभव किया जाता है, सब आप ही आप हैं, आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ऐसे सर्वस्वरूप सर्वेश्वर को बारम्बार प्रणाम है।

प्रभो ! इतना सब होने पर भी आपके यथार्थ स्वरूप को कोई जान नहीं सकता। सत्वगुण को ज्ञान तथा प्रकाश युक्त कहा है, कि सत्वगुण स्वयं आप तक नहीं पहुँच सकता, कारण कि आप गुणातीत हैं। त्रिगुण जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह महत्तत्व भी आपका यथार्थ स्वरूप प्रकट करने में असमर्थ है। इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेव तथा सबसे बुद्धिमान् कर्म करने में निष्णात मनुष्यों का मन तथा उनकी बुद्धि भी आपको नहीं जान सकती। आप वाणी, मन तथा बुद्धि के विषय नहीं। क्योंकि ये सब तो आपके पश्चात उत्पन्न हुए हैं। जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश भी अवश्य होगा। जो स्वयं आद्यन्तवन्त है, जो स्वयं आदि अन्त युक्त है। वह आप अनादि अनन्त को यथार्थ रूप से जान ही कैसे सकता है। इसीलिये तो विद्वान् शास्त्रों को पढ़ते हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ में आपका रूप स्थिर करते हैं, वेद उसके लिये कह देता है नेति नेति "नेदंयदिदमुपासते" यह वह नहीं है नहीं है, जिसकी तुम उपासना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है। इससे वे अन्त में जाकर शास्त्राध्ययन से उपरत हो जाते हैं, शब्द शास्त्र से विराम को प्राप्त हो जाते हैं। जब आप ऐसे अवाङ्मनसगोचर हैं, तो फिर कैसे तुम्हें पावें ? परमहंस मुनिजन किस प्रकार तुम्हारा साक्षात्कार करते हैं ? वे एकमात्र भक्तिभाव से तुम्हें उपलब्ध करते हैं। प्रभो ! आपकी भक्ति विविध भाँति की है, किन्तु षडंग भक्ति के बिना तो आप किसी प्रकार प्राप्त होते ही नहीं।

हे अकिंचन गोचर ! जो सर्वस्व त्याग कर संसार के विषय निस्सार हैं इनमें केवल मात्र आप ही सार है ऐसा नीर क्षीर विवेक करने वाले परम हंस मुनियों द्वारा ही आप प्राप्य हैं। आप अन्य उपायों द्वारा प्राप्त होते ही नहीं। उपायों द्वारा आपको प्राप्त करने की इच्छा ही हास्यास्पद है। आप तो कृपा

साध्य हैं और कृपा होती है भक्त पर। वह भक्ति ६ प्रकार की है। भक्ति का पहिला अंग तो यह है कि हृदय से वाणी से और शरीर से आपको नमस्कार करता रहे। हृदय से सदा नमो नमः नमो नमः नारायणाय नमः कहता रहे। वाणी से भी नमस्कार करे और आपके अर्चा विग्रह को तथा आपके भक्त साधु संत तथा अन्य पूजनीय देव द्विज और प्राज्ञों को साष्टाङ्ग प्रणाम करे। प्रणति से आपकी भक्ति की उपलब्धि होती है।

दूसरा भक्ति का अङ्ग है स्तुति प्रार्थना। सुन्दर सुन्दर हृदय ग्राही स्तोत्रों से आर्त होकर आपकी प्रार्थना करे। स्तुति तो सभी को प्यारी लगती है फिर भक्तों द्वारा स्तुति सुनकर तो आप उनके हाथों विक ही जाते हैं। देव को शीघ्र से शीघ्र प्रसन्न करने के निमित्त अंजलि मुद्रा ही बताई है।

तीसरा भक्ति का अंग है सर्व कर्मार्पण। जो भी कुछ करो जो भी भोजन आदि करे, यज्ञ याग हवन करे दान दक्षिणा दो जो भी कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत उपवास करे तीर्थ स्नान व्रत पारायण तथा और भी जो कार्य करें सभी को आप सर्वान्तर्यामी के अर्पण करने दें। अपने लिये कुछ शेष रखे ही नहीं। जब फल की इच्छा ही न रहेगी तब करने वाला निर्गुण हो जायगा और आप निर्गुण को प्राप्त कर लेगा।

भक्ति का चौथा अंग है उपासना। विविध उपायों से मनको आपके समीप लगाये रहना। ध्यान धारण द्वारा आपका ही चिन्तन करते रहना। वह उपासना अग्नि की हो, आपकी प्रतिमा की हो या पंच भूत अतिथि ब्राह्मण, गुरु गौ किसी में भी की गयी हो, उसमें निमित्त आपका ही हो।

पाँचवाँ भक्ति का अंग है चरणों की स्मृति बनी रहे। उठते बैठते सोते लेटते सभी काम करते आपके अरुण चरण कमलों

की स्मरण होता रहे। आपके चरणों के जो नख हैं उनसे एक प्रकार की ज्योति निकलती रहती है वही उपासकोंके हृदयान्धकार को दूर करती है। अतः चरण स्मृति अत्यावश्यक अंग है।

और भक्ति का छटा मुख्य अंग है कथाश्रवण जब तक नित्य नियम से साधक कथा श्रवण करेगा।तवतव उसे आपकी भागवती कथाओं के श्रवण करने का व्यसन न लगेगा। कथा न सुनने पर जब तक उसके मन में व्यग्रता न होगी तब तक आपकी भक्ति कोसों दूर है। अतः नित्य नियम से कथा श्रवण करना यह भक्तों का परम मुख्य कार्य है।

इस प्रकार हे हरे! जब तक साधक इन ६ अङ्गों वाली भक्ति का आचरण न करेगा तब तक भक्ति हो ही कैसे सकती है और भक्ति के बिना आप प्राप्त कैसे हो सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतनी स्तुति करके प्रह्लाद जी चुप हो गये। नृसिंह भगवान् ने भी क्रोध छोड़ उन्होंने शान्त होकर जैसे वर माँगने को कहा और प्रह्लाद जी ने जो जो उत्तर दिये इन सबका वर्णन तो मैं विस्तार से भागवती कथा प्रसंग में कर ही चुका हूँ। यह मैंने प्रह्लाद स्तुति आपसे कही अब जिस प्रकार ग्राह के पकड़ लेने पर गजेन्द्र ने हरि भगवान् की स्तुति की उस दिव्य स्तुति का वर्णन मैं आपसे करूँगा। आप सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

प्रभुवर! बिना प्रनाम और तव इस्तुति[१] गाये।
सख समरपन करम ध्यान तव चरन लगाये॥
करम उपासन कथाश्रवन नित नियमित कीये।
छै अंगनि की भक्ति बिना प्रविसो क्यों हीये॥

यों इस्तुति प्रह्लाद जी, करिकै पुनि चुप ह्वै गये।
ह्वै प्रसन्न नरसिंह ने, भक्ति सुलभ वर बहु दिये ॥

पद

भक्ति तैं भक्त हिये में आओ।
नमों नमों नरायन विनु तुम प्रनतनिकूँ अपनाओ ॥१
इस्तुति करैं करम सब अरपें पूजा पाठ कराओ।
करैं ध्यान चरननि को नित प्रति तिनिकूँ दरस दिखाओ ॥२॥
कथा श्रवन करि गुन तव चिन्तें तिनि चित में जुमि जाओ।
प्रभु पद पुनि पुनि परे प्रनत पति प्रेम पियूष पिआओ ॥३॥

प्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति [८]

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथसिद्धाः,
सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः,
किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥१॥
मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजः,
तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो,
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥२॥
विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ,
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ,
प्राणंपुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥३॥
नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो,
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं,
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥४॥
तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य,

सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः,
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥५॥
सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो,
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य,
विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥६॥
तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य,
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे,
रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥७॥
नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य,
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णान्,
निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥८॥
त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र,
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं,
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥९॥
यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म,
शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।

दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं,
भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥१०॥
सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया,
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो,
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥११॥
बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह,
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टः,
तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥१२॥
यस्मिन् यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्,
यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः,
संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥१३॥
माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः,
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं,
संसारचक्रमज कोऽतितरेत् त्वदन्यः ॥१४॥
स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना,
कालोवशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे,

निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥१५॥

दृष्टा मया दिविविभोऽखिलधिष्ण्यपानाम्,
आयुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासजृम्भितविभ्रू,
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥१६॥

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ,
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण,
कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥१७

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः,
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्,
कामानलं मधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥१८॥

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्,
जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥१९॥

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्यात्,
जन्तोयथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः,
सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥२०॥

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे,
कामाभिकाममनु यः प्रपतन् प्रसङ्गात् ।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः,
सोऽहंकथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥२१॥
मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च,
मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुः,
त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥२२॥
एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वम्,
आद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं,
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥२३॥
त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो,
माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ।
यद् यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च,
तद् वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥२४॥
न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये,
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रः,
तुर्येस्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ॥२५॥
तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या,

सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।
अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधेः,
नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥२६॥
तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमानः,
त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो,
जातेऽङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम् ॥२७॥
स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं,
कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं,
भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥२८॥
एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरु,
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं,
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥२९॥
तस्मै भवान् हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्,
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च,
सत्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३०॥
इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैः,
लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्,

धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं,
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३१॥
नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ,
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं,
तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३२॥
जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता,
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिः,
बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥३३॥
एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्याम्,
अन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं,
हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥३४॥
को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन् प्रयासः,
उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो,
किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥३५॥
नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्याः,
त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ,

मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥३६॥
प्रायेणदेव मुनयः स्वविमुक्तिकामा,
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको,
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥३७॥
यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं,
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः,
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥३८
मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म,
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां,
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥३९॥
रूपे इमे सदसती तव वेद सृष्टे,
बीजांकुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्विते त्वां
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥४०॥
त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बु मात्राः,
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुण श्च भूमन्,
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥४१॥

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो,
सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ।
आद्यन्तवंत उरुगाय विदन्ति हि त्वाम्,
एवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥४२॥
तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः,
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं,
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥४३॥

गजेन्द्र कृत-हरि स्तुति (१)

(६०)

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादि बीजाय परेशायाभि धीमहि ॥*
(श्रीभा० २ स्क ३ अ० २ श्लो०)

छप्पय

ग्राह पकरि पग लियो घुस्यो सर महँ जग गजपति ।
तब बल जब घटि गये पुकारे प्रभु कातर अति ॥
हे जग कारन आदि चिदात्मक परम पुरुष हरि ।
परमेश्वर परदेव नमूँ तव पद पदुमनि परि ॥
जगन्नाथ जगपति जनक, जगदीश्वर जगरूप हरि ।
करूँ कमल पद बन्दना, करुनाकर करि कमल धरि ॥

क्रौञ्च द्वीपमें एक त्रिकूट नामक पर्वत है, वह पर्वत दश सहस्र योजन ऊँचा है। सुवर्ण, चाँदी और लोहे के उसके तीन शिखर हैं। उसपर वरुणजी का एक बड़ा ही सुन्दर उद्यान

---

* गजराज भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"मैं उन ओंकार स्वरूप जगत् के आदि कारण परम पुरुष परमेश्वर को ध्यान करता हूँ, जिनके द्वारा इस देह आदिको चैतन्यता प्राप्त होती है।"

है, वह पर्वत चारों ओर से क्षीर सागरसे परिवेष्ठित है उसी पर एक देवताओं का बड़ाभारी सरोवर था। वरुणजी का वह क्रीड़ास्थल था। उस वनमें एक मत्त गजराज रहता था। एक दिन वह अपने यूथकी हथिनियों तथा बच्चों को लिये हुए उस सरोवर में गया। बड़ी देर तक वह बच्चों और हथिनियोंके साथ जलक्रीड़ा करता रहा। उसी सरोवर में एक बड़े भारी द्वीप के समान ग्राह रहता था। उस ग्राहने आकर पट्टसे हाथी का पैर पकड़ लिया। हाथीने अपनी पूरी शक्ति लगायी, सभी उपाय किये, किन्तु वह पैरको ग्राहसे छुड़ा नहीं सका। कभी ग्राह गजको खींच ले जाता कभी गज थाड़ा ग्राहको खींचलाता ऐसे दोनों को संघर्ष करते हुए एक सहस्त्र वर्ष बीत गये। बच्चे तथा हथिनियाँ उसे वहीं छोड़ कर चले गये, अपनी शक्ति भी काम न आयी तब असहाय होकर उसने भगवान् को पुकारा। गजेन्द्रकी वह स्तुति अत्यन्त ही दिव्य अलौलिक है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! गजराज को अपने शारीरिक बलका बड़ा गर्व था। उसे इस बातका बड़ा अभिमान था, कि मुझे कोई भी परास्त नहीं कर सकता। एक सहस्त्र वर्षतक जब सम्पूर्ण बल लगाकर क्लान्त हो गया और ग्राहसे पैर न छुड़ा सका, तब उसका बल सम्बधी गर्व गल गया। चकना चूर हो गया। उसे अपनी इतनी हथिनियों पर बहुत से बलवान् बालकों पर भी बड़ा भरोसा था। वह सोचता था, ये मेरे ऊपर सब प्राणदे दें। मैं इन सबका पालन पोषण करता हूँ, ये भी मुझसे कितना स्नेह करते हैं, इनके रहते मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता। गजका यह अभिमान भी जाता रहा। स्त्री बच्चे उसे विपत्ति में फँसा देखकर भाग गये, फिर कोई देखने भी नहीं आये। उनकी ओर से भी चित्त निराश हो गया। जब उसे चारों ओर से कोई सहारा दिखायी नहीं दिया, तो उस

समय उसके पूर्व जन्मके सुकृत काम आये। पूर्व जन्ममें उसने भगवान् की आराधना की था। पूर्व जन्ममें यह गजराज इन्द्रद्युम्न नामका विष्णुव्रत परायण राजा था। जब यह तपस्या कर रहा था, तो अगस्त्य मुनि वहाँ आये। राजासे भूलमें उनका अपचार बन गया। मुनिको देखकर राजा खड़ा नहीं हुआ, उन्हें अभ्युत्थान नहीं दिया, इसीसे मुनिने राजा को गज होने का शाप दे दिया। राजा हाथी तो हो गया, किन्तु पूर्वजन्ममें की हुई विष्णु भक्ति व्यर्थ तो जाती नहीं। इस संकट कालमें उसे भगवान् की स्मृति हो आई। उसने सोचा—"क्यों न मैं सर्व संकट हारी समस्त विपत्ति विदारी भगवान् का ध्यान करू। उनके स्मरण मात्रसे सभी क्लेश कट जाते हैं, सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं, सभी संकट कट जाते हैं। यह सोचकर उसने सूँड़ में एक खिला कमल उठाया और नेत्र बन्द करके भगवान् की स्तुति करने लगा।

स्तुति करते हुए गजराज कह रहा है—अब मैं उन ईशों के भी ईश परमेश्वर का ध्यान करता हूँ, जो ओंकार स्वरूप हैं। ध्यान तो कारण का ही करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत के आदि कारण वे सर्वान्तर्यामी श्री हरि ही हैं। शरीरों में जहाँ भी चेतना है, सबका स्रोत श्री हरि ही हैं। प्रकृति और पुरुषको जगत का कारण माना है, किन्तु वे प्रभु तो पुरुषसे भी उत्तम पुरुषोत्तम हैं, पुरुषसे भी परमपुरुष हैं। ऐसे उन आदि बीज परेश के पाद पद्मोंमें पुनः पुनः प्रणाम है। उन्हीं अव्यक्त रूपका मैं मनसे चिंतन करता हूँ।

इस समय मेरा कोई सहायक दृष्टि गोचर नहीं होता। अब तो वे भक्त वत्सल भगवान् ही मेरे एकमात्र सहायक हैं। उन्हीं की शरण में जाता हूँ। जो सम्पूर्ण चराचर जगत् के

अधिष्ठान हैं, जगत् जिनमें अधिष्ठित है, स्थित है। जो जगत के उपादान कारण हैं जिनसे यह स्थावर जंगम समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है। जिनसे यह जगत व्याप्त है जो सर्वान्तर्यामी हैं, यही नहीं जैसे सुवर्ण ही आभूषण बन गया है, दूध ही जमकर दही हो गया है, ऐसे वे स्वयं ही जगत् है, उनसे भिन्न जगत की सत्ता नहीं। साथ ही जो इस कार्य कारण रूप जगत से परे भी हैं। मैं उन्हें अपने आप प्रकट होने वाले जिनका स्वयं कोई कारण नहीं किन्तु वे ही सबके कारण हैं, उन स्वयंभू भगवान् की मैं शरण में हूँ, उन्हींसे मैं प्रसन्न हूँ।

मैं उन सर्व साक्षी सर्वेश्वर की सर्वात्म भाव से शरण ग्रहण करता हूँ। जो अविलुप्त दृष्टि वाले हैं, यह सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च तो कभी दीखने लगता है, कभी लुप्त हो जाता है। सृष्टि के समय यह चराचर संसार दीखने लगता है, प्रलय कालमें इसका पता भी नहीं चलता। वे भगवान् अपनी माया द्वारा कभी तो इसे अपने भीतर छिपा लेते हैं, कभी प्रकट कर देते हैं। कार्य कारण रूप यह प्रपंच भगवान् की दृष्टि में कभी ओझल नहीं होता। क्योंकि इसके कर्ता भर्ता तथा संहर्ता एक मात्र वे ही तो हैं। प्रलयकाल में कालकी प्रेरणा से जब ये सम्पूर्ण लोक, समस्त लोकपाल तथा और भी जगत के जितने कारण हैं, उन सबके विनष्ट हो जाने पर यह विश्वब्रह्माण्ड तमसे आवृत हो जाता है, चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दृष्टि गोचर होता है, उस समय भी उस तमके परे जो बैठे बैठे हँसते रहते हैं। उस समय भी अन्धकार जिन्हें स्पर्श तक नहीं कर सकता। ऐसे ज्ञान स्वरूप चैतन्य स्वरूप सत्यरूप, सर्वव्यापक, आत्मयोनि परात्पर प्रभु मेरी रक्षा करें, मुझे इस संकट से छुड़ायें मेरे अज्ञान अन्धकार को नाश करें।

जो प्रभु दुर्विज्ञेय है, जिनके यथार्थ स्वरूप को सत्वगुण प्रधान देवता नहीं जानते, बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी ऋषि महर्षिगण जिनके वास्तविक तत्वसे अनभिज्ञ बने रहते हैं, जब इतने इतने श्रेष्ठ पुरुष जिनके स्वरूप को भली भाँति नहीं जानते तब साधारण लोगों की तो बात ही क्या है, फिर तिसमें मैं तो अत्यंत अधम योनि तमो गुणसे आवृत पशु हूँ, मैं उनके यथार्थ रूपका कथन कर ही कैसे सकता हूँ। वे परात्पर प्रभु क्रीड़ा के लिये, लीला के निमित्त, मनोविनोद की इच्छा से विविध योनियों में नाना रूप रखकर विचित्र क्रीड़ायें किया करते हैं, नटके समान अत्यद्भुत चेष्टायें किया करते हैं। अपनी कलित कलाओंका प्रदर्शन करते रहते हैं, दुष्कर दुर्गम अभिनय दिखाते रहते हैं, वे परम प्रकाशक परात्पर प्रभु मेरी सहायता करें, रक्षा करे मुझे अपनी शरणमें ले लें।

ऋषि मुनि गण सिद्ध साधक गण सदा ही जिनके साक्षात्कार के लिये व्याकुल बने रहते हैं। भाँति भाँति के शास्त्रीय साधन करते हैं, विविध भाँतिके उपाय करते हैं। सम्पूर्ण चराचरमें अपनी ही आत्मा का अवलोकन करने की चेष्टा करते हैं। प्राणिमात्र में मैत्री भाव स्थापित करते हैं, सर्वभूत सुहृद बन कर किसी भी प्राणीको पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। घर द्वार कुटुम्ब परिवार तथा सगे सम्बधी समस्त सम्बधों को तिलाञ्जलि देकर जन संग शून्यबन कर बनमें ध्यान धारण करते हुए काल यापन करते हैं, वे साधुस्वभाव के सज्जन संतगण परम मङ्गल-मय आपके दर्शनों के निमित्त ही सब कुछ करते हैं,मनन-शील बनकर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए आपका आश्रय लेते हैं, वे ही सम्पूर्ण प्राणियों के आश्रय मेरे भी आश्रय हों। अगतियों के एकमात्र गतिगोविन्द मेरी गति हों। उन्हीं अशरण शरण की शरणमें मैं प्राप्त हुआ हूँ।

विद्व जन जिनके जन्म की कल्पना करते हैं, शास्त्रकार जिनके सहस्रों अनन्त नाम बताते हैं। जिनके अगणित कर्मों का वर्णन वेद शास्त्र सदा करते रहते हैं। जिनके रूपों की कल्पना करके साधक उनमें अपने मनको फँसाते हैं। जिनके गुणों की गणना गणेशादि देव तथा शारदा शेष आदि भी पूर्ण रीत्या करने में समर्थ नहीं है। कुछ लोग उनमें दोष देखने की भी चेष्टा करते हैं, किन्तु वास्तव में देखा जाय तो उन निर्गुण निराकार, निजानन्द स्वरूप मे न गुण है न दोष है। न उनका कोई निश्चित नाम ही है और न रूप ही। जिनका न कभी जन्म होता है और न जो कभी कर्म ही करते हैं, तो भी लीला के निमित्त वे जगत् की रचना करते हैं,पालन भी करते हैं और संहार भी करते हैं। सृष्टि रचना के लिये अनेक रूप रखलेते हैं, पालन के विविध वेष बना लेते हैं, और संहार के लिये भी रुद्र रूप रख लेते हैं। समय समय पर आवश्यकतानुसार अपनी माया का आश्रय लेकर वे क्रीड़ा करने के निमित्त रूप बना लेते हैं, वे ही अपरमित शक्ति सम्पन्न, अत्यद्भुत अत्यन्ताश्चर्ययुक्त कर्म करने वाले अरूप, अच्युत, परब्रह्म परमेश्वर परात्पर प्रभुके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

जगत के सभी पदार्थों को सूर्य प्रकाशित करते हैं चंद्रमा और अग्नि प्रकाशित करते हैं, किन्तु वे भगवान् तो स्वयं प्रकाश हैं, उन्हें अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। वे अपने तेज प्रकाश से प्रकाशित हैं, जगत के पदार्थ हैं, इसमें साक्षी मन है, बुद्धि है, किन्तु मन और बुद्धिके भी साक्षी प्रकृति और पुरुष के भी साक्षी अर्थात सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के एकमात्र साक्षी वे परब्रह्म परमात्मा ही हैं। इद्रियाँ विषयों का ज्ञान करती हैं, इन्द्रियों का भी नियामक मन है, मन, वाणी और

चित्त तथा अन्तः करण से भी अत्यन्त दूर वे प्रभु हैं वेही सब की काष्ठा हैं, उनसे परे कुछ भी नहीं वे सबसे परे हैं, ऐसे परात्पर प्रभु को वारम्वार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं, मुनियो! इसप्रकार सूँड़में कमल लिये गज-राज स्तुति कर रहे हैं, अब जैसे वे सर्व नाम भगवान् की सर्वात्म भावसे सर्व रूपसे स्तुति करेंगे उसका वर्णन आगे किया जायगा।

छप्पय

जो जाग्रत सब काल कालके काल कहावें।
प्रलय माहिँ जो बचें वही प्रभु मोइ बचावें॥
ऋषि, मुनि, मनु, सुर, इन्द्र रूप नहिँ जानें जिनको।
औरनि की का कथा पार को पावें तिनको॥
नाम, रूप गुन, दोष जग, करम धरम तैं रहित जो।
लीला हित जगकूँ रचैं, रक्षा मेरी करहिँ सो॥

पद

शरन अब उन हरि की हौं जाऊँ।
पुरुषोत्तम परम पुरुष परावर तिन पद शीश नवाऊँ॥१॥
जो साक्षी सब जग प्रपंच के का कहि तिनि गुन गाऊँ।
तमतैं परें सजग सब कालहु कैसे तिन्हें मनाऊँ॥२॥
सबकी गति पालक सबई के अपनी विपति सुनाऊँ।
जनम करम नहिँ नाम रूप जिनि कैसे टेरि बुलाऊँ॥३॥
है अरूप अवतार धरे बहु, हियमें ध्यान लगाऊँ।
तजि सब आश परयो प्रभु पदुमनि, विपति पार प्रभु पाऊँ॥४॥

गजेन्द्र कृतहरि स्तुति

(६१)

सत्त्वेन प्रति लभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता।
नमः कैवल्य नाथाय निर्वाण सुखसंविदे ॥*

(श्री भा० ८ स्क० ३ अ० ११ श्लो०)

छप्पय–

करिकें करमनि शुद्ध त्याग चित जिनकूँ पावें।
तिनि निरवान सरूप मोक्षपति प्रभुपद ध्यावें॥
सब धरमनि अनुकरन करें सब माहिं लखावें।
जो साक्षी क्षेत्रज्ञ प्रकृति पर पुरुष कहावें॥
द्रष्टा सब के सब समय, सब प्रतीति के मूल हैं।
करूँ बन्दना सकल विधि, जो सबके अनुकूल हैं॥

जग के सभी सगे सम्बन्धियों से सहायता की आशा छोड़कर, सबके सदा सर्वदा एकमात्र आश्रय उन श्री हरि को आर्तभाव से जो विनती करता है, उसकी रक्षा शरणागत वत्सल

---

* स्तुति करते हुए गजेन्द्र कह रहे हैं—"जो भगवान् नैष्कर्म्य द्वारा विशुद्ध बने मन में मनीषियों को उपलब्ध होते हैं, उन कैवल्य नाथ मोक्ष सुख के स्वामी श्री हरि को पुनः पुनः प्रणाम है।"

अवश्यमेव करते हैं, किन्तु वह स्तुति प्रार्थना सच्चे हृदय से एकाग्रमन से होनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ग्राह ने जिसके पैर को कसकर पकड़ र ा है, वह जल में खड़ा हुआ गजराज सूँड़ में कमल लिये हुए स्तुति करते हुए कह रहा है—मैं उन अखिलेश्वर की स्तुति करता हूँ जो मोक्षपति हैं, मुक्ति जिनकी आज्ञाकारिणी दासी है। जिनकी प्राप्ति अहंता ममता के कारण नहीं होती, जो अपने चित्त को शास्त्रीय सत् साधनों द्वारा शुद्ध कर लेते हैं और फिर समस्त कर्मों का त्याग करके नैष्कर्म्य बन जाते हैं, उन सर्व त्यागी विरागी निर्मल मन वाले व्यक्तियों को वे प्राप्त होते हैं जो निर्गुणानन्दानुभव स्वरूप हैं, उन सर्व नियन्ता नटवर की मैं शरण मे हूँ, उन्ही के पाद पद्मों में प्रणाम करता हूँ।

जितने प्रकृति के स्वरूप हैं, सभी में वे ही दिखायी देते हैं, वे ही सब कार्यों का अनुकरण सा करते दृष्टि गोचर होते हैं। शान्त स्वरूप भी उन्हीं का है, वे ही घोर रूप रखकर घोर कार्यों को करते हैं, वे ही मूढ़ रूप रखकर मूढ़ता करते दिखायी देते हैं। वे ही सत्व गुण को धारण करके सत्व गुण वाले बन जाते हैं, रजो गुण का अनुसरण करके रजो गुणी से दिखाई देते हैं और तमो गुण का अनुकरण करके ठेठ तमों गुणी दिखाई देने लगते हैं। वास्तव में देखा जाय तो वे निर्गुण हैं, निर्विशेष हैं, सर्वत्र समान भाव से सर्वदा रहने वाले हैं। जो ज्ञान घनहैं, विज्ञान स्वरूप हैं, उन्हीं सर्वात्मा सर्वगत सर्वेश्वर की मैं शरण में हूँ, उन्हीं के पाद पद्मों में मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

इस शरीर को ही क्षेत्र कहा है इस क्षेत्र को जानने वाले इसके जो स्वामी हैं, वे ही क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं, वे सब क्षेत्रों में निवास करने वाले श्रीहरि ही क्षेत्रज्ञ हैं। इन शरीरों के ही स्वामी नहीं

हैं, चर अचर स्थावर जंगम, सूक्ष्म स्थूल जो भी कुछ देखा, सुना तथा अनुभव किया जाता है उन सब के स्वामी हैं अध्यक्ष हैं, अधिपति हैं। कोई ऐसा पदार्थ नहीं जिसके वे साक्षी न हों, इसीलिये शास्त्र उन्हें सर्व साक्षी कहकर सम्बोधित करते हैं। उनसे पहिले का कोई भी पदार्थ नहीं। सबके आदि वे ही हैं, उनके परचात् ही सबकी उत्पत्ति हुई है। उनकी तो कभी उत्पत्ति हुई ही नहीं। समस्त जीवों के आदि कारण वे ही हैं। प्रकृति की विकृति से ही विश्व ब्रह्माण्ड बना है। जो मूल प्रकृति हैं, जिस समय तीनों गुण साम्यावस्था में अवस्थित थे, उस मूल प्रकृति के भी उत्पत्ति स्थान, कारण वे श्री हरि ही हैं उन्हीं सबके नियामक सबके कर्ता सबके स्वामी प्रभु के पाद पद्मों में प्रणाम है।

जो समस्त इन्द्रियों के नियामक हैं, जो समस्त विषयों के द्रष्टा हैं, जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं उन्हीं के आधार से होती हैं, उन्हें पृथक करदो तो किसी की भी प्रतीति संभव नहीं। यह सम्पूर्ण जगत उनकी छाया मात्र है। छाया सदा सत्ता वाली वस्तु की होती है, जिसकी सत्ता ही नहीं उसकी छाया कैसी ? ये महत्तत्व बुद्धितत्व अहंकारि जितने तत्व हैं सब असत् हैं उनकी छाया मात्र है, इनके ही द्वारा उनकी सत्ता सूचित होती है। जैसे आकाश में कोई पक्षी उड़ता जा रहा है वह दिखाई नहीं देता किन्तु उसकी छाया भूमि पर दिखाई देती है, उस छाया के अनुमान से ही उस पक्षी की सत्ता सिद्ध होती है इसी प्रकार यह जगत किसी का प्रतिबिम्ब है, तो इसका बिम्ब भी कोई अवश्य होगा, इसका बनाने वाला भी कहीं छिपा हुआ होगा। वस्तुओं की सत्ता से चैतन्यता से तथा उनके आनन्द रूप से और प्रकाश से जो प्रत्यक्ष सब प्रकाशित प्रतीत होते हैं, सबके भीतर बाहर व्यक्त तथा अव्यक्त भाव से निवास करने वाले उन सर्व प्रकाशक प्रभु को बारम्बार नमस्कार है।

जो हरि सब के कारण हैं, किन्तु जिनका स्वयं कोई कारण नहीं, जो सदा सर्वदा कारण रहित हैं, कृपालु हैं। यद्यपि इन्हें मनीषी जगत् का कारण बताते हैं, जैसे दही का कारण दूध है, किन्तु दही दूध का विकार है, ऐसे वे किसी का विकार नहीं, इसीलिये वे अद्भुत कारण कहलाते हैं। उन्हें चाहे अखिल कारण कहो, निष्कारण कहो अथवा अद्भुत कारण एक ही बात हैं, किन्तु वे संसारी कारणों की भाँति विकारी कारण नहीं है। जैसे समस्त जल का आश्रम समुद्र है, शरीरों में वापी कूप तड़ाग तथा नदियों का समस्त जल एक दिन समुद्र में पहुँचेगा। क्योंकि जो जिसका आश्रय स्थान है अन्त में उसी में आश्रित लीन हो जाता है। इसी पर उत्तम पुरुषों के भगवद् भक्तों के ज्ञानी विज्ञानियों के एक मात्र आश्रय आप ही हैं, आप महार्णव स्वरूप हैं मोक्ष स्वरूप तथा आनन्द रूप हैं, ऐसे आप अनन्योपासकों के आश्रय अच्युत के अरुणारविन्द चरणों में बारम्बार नमस्कार है।

जैसे अरिणी में अग्नि छिपी रहती हैं, उसी प्रकार सत्वरज और तम इन तीनों गुणों, में ही आप छिपे रहते हैं, कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति आप को देख नहीं सकता, वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। जैसे अग्नि ईंधन को भस्मसात् कर देती है, वैसे ही ज्ञानाग्नि स्वरूप आप समस्त कर्मबन्धनों को स्वाहा कर देते हैं। हे स्वामिन्! आप का मानस अर्थात् संकल्प गुणों का क्षोभ करने में समर्थ है। अथवा गुण क्षोभ के कारण ही आप में मनकी स्फूर्ति होती है आप स्वतः नैष्कर्म्य भाव से विधि निषेध रूप शास्त्र से वर्जित है, तथा स्वयं प्रकाश होते हैं, ऐसे आप को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

जो प्रपन्न पारिजात हैं। प्रपन्न भी क्यों न हों, नर नारियों की बात तो पृथक् रही, मुझ जैसा पशु भी प्रपन्न क्यों न हो

गया हो, सर्वात्मभाव से शरण में आ गया हो, तो उसके बन्धनों को जो काटने वाले हैं। जो स्वयं मुक्त स्वरूप हैं, जिनमें करुणा कूट कूट कर भरी है, जो करुणा के वरुणालय ही हैं, जिनको अपने आश्रितों के कार्य में तनिक भी आलस्य नहीं है, जो भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त सदा कातर बने रहते हैं, जो करुणा करने के निमित्त बद्ध परिकर व्यग्र बने बैठे रहते हैं। अपने अंश से समस्त देह धारी प्राणियों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से प्रतीत होते हैं, जो अपरिच्छिन्न हैं, बड़े गुण सम्पन्न हैं, बड़े से भी बड़े हैं वृहत से भी वृहत हैं, उन अन्तर्यामी अच्युत केपोज पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

जो ज्ञानियों को प्रपन्न भक्तों के लिये सुलभ हैं। किन्तु जो इस क्षण भंगुर अनित्य नाशवान् शरीर में अहभाव किये हुए हैं, जो मिट्टी ईंट पत्थर के बने घर में सुवर्ण चाँदी तथा अन्य प्रकार के नाशवान धनों में, स्त्री, पुत्र, स्वजन तथा सेवकों में ममता किये बैठे हैं, इन्हें अपना समझते हैं, इन सबमें जिनका चित्त आसक्त बना हुआ है ऐसे अहंता ममता युक्त अज्ञ पुरुषों के लिये अत्यंत ही दुष्प्राप्य है। जो गुण संगों से सर्वदा विवर्जित हैं जो गुणों में आसक्त चित्त वालों के चिन्तन के विषय हैं ही नहीं, किन्तु जिन्हें जीवन मुक्त पुरुष अहंकार शून्य निर्लिप्त बुद्धि वाले गुणातीत भक्त अपने हृदय में चिन्तन करते हैं, अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि वाले जिनका अन्तःकरण में अनुभव करते हैं उन ज्ञान स्वरूप अखिल जगत के नियामक समग्र ऐश्वय सम्पन्न परमात्मा के पादपद्मों में प्रणाम है।

जो सब की भावना को पूरी करते हैं, सबको इच्छानुसार फल देते हैं, धर्म चाहने वालों की मति धर्म में लगाते हैं, उन्हें धर्मनिष्ठ बनाते हैं अर्थ के इच्छुकों को अर्थ प्रदान करते हैं

कामेच्छुकों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं, उन्हें काम भोग देकर तृप्त करते हैं, जो मोक्षार्थी हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्त कराते हैं, जो जिस भाव से भजता है, उसको उस भावना को पूर्ण करते हैं, उसकी अभीष्ट गति को प्राप्त कराते हैं। जितना माँगता है उतना तो देते हैं उससे और भी अधिक देते हैं। क्योंकि वे बहुत बड़े दानी हैं, अल्प देना तो वे जानते ही नहीं। वे अव्यय-अप्राकृत देहादि भी देते हैं नाना भोग ऐश्वर्य और उत्तम से उत्तम गति भी देते हैं। दिव्य भोगों को यथेच्छ भोग सकें ऐसे सुदृढ़ देवादि शरीर भी देते हैं। सारांश जिनके यहाँ कुछ भी अदेय नहीं, जो सदा देते ही रहते हैं, भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करतेही रहते हैं, जिनके द्वार से कभी कोई विमुख आज तक लौटा ही नहीं उन्हीं की मैंने शरण ग्रहण की है। जो सबके उद्धारक परम कारुणिक महान् दयालु प्रभु मेरा भी उद्धार करें मुझे भी दुःख से छुड़ावें।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! इस प्रकार गजराज ने स्तुति को अब वे जैसे अपनी स्तुति का उपसंहार करेंगे उसे आगे कहूँगा।

छप्पय

जिनको वसिकें विज्ञ विजन बन ध्यान लगावें।
सत, रज, तम अनुकरन करें निरगुन कहलावें॥
प्रतिबिंबित लखि असत् प्रकाशित सत हरि होवें।
करुना जल में न्हाय भक्तवर मन मल धोवें॥
प्रभु प्रपन्न पशु पाश कूँ, काटें करुनाकर सदय।
बार बार बन्दन करूँ, करें अकिंचन कूँ अभय॥

पद

मोहमय माह ग्रस्यो हौं गिरधर।
पकरि पैर लै गयो अगम जल, खींचत सरवर भीतर ॥१॥
तुम सरवज्ञ सकल संहारी, सत सरूप सरवेश्वर।
कमल माल कर कमल कृपाकर, कमल नयन करुनाकर ॥२॥
निरविकार निरदोष निरन्तर, नित्य नियामक नटवर।
स्वयं प्रकाश प्रेमघन पूरन, पशुपति पालक प्रभुवर ॥३॥
तन, धन, दारा, सुत, पशु, परिजन, फँसे मोह जे पामर।
तिनतें दूर रहो सर्वाधिप, सब साधन सुख सागर ॥४॥
धरम अरथ अरु काम मोच्छ हित, भजन करत नित जे नर।
करौ कामना पूरन सबकी, बन्दौं पद तिनि सुखकर ॥५॥

गजेन्द्रकृत-हरि स्तुति [३]

(६२)

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थम्,
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलम्,
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ ७

(श्री भा० ८ स्क० ३ अ० २० श्लो०)

छप्पय

मंगलमय गुन चरित गाइ सुकृती सुख पावें ।
ते परमेश्वर प्रनतपाल प्रभु पार करावें ॥
अगिनि शिखा रवि किरन निकरि पुनि तिनिमय होवें ।
त्यों तन, मन, गुन, करन होंहिं जिनितें जिनि सोवें ॥
नेति नेति कहि जो कथत, असत् और सत तें अतत ।
गहौ चरन प्रभु चरन तिनि, दुख कटत आरत भगत ॥

श्री भगवान् निर्गुण होकर भी सगुण बन जाते हैं। आप
जो लीला रहित होकर भी अवतारी बनकर लीलायें करते हैं

उन्हें पाने का—उन्हें प्रसन्न करने का एक ही उपाय है उन गुणों को सुनो और गाओ। गुण गायन करने से ही निर्गुण से सगुण हो जाते हैं, निराकार से साकार बन जाते हैं अगोचर से गोचर हो जाते हैं और अशरीरी से शरीरी बनकर सम्मुख आ जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान की स्तुति करते हुए गजराज कह रहे हैं—"मैं उन पुण्यश्लोक प्रभु की प्रार्थना करता हूँ, जिनके पवित्र चरित्र पशु, पक्षी तथा पामर प्राणियों को भी पावन बनाने वाले हैं, जिनके अत्यन्त अद्भुत, मंगलमय, मधुमय मनोहर चरित्रों का प्रभुपरायण अनन्य उपासक भगवत्भक्त निरन्तर गान करते रहते हैं, उन गुणगन गान से ही वे परमानन्द पयोधि में निमग्न होकर समस्त सांसारिक इच्छाओं से रहित बन जाते हैं, किसी भी वस्तु की वांछा नहीं करते। उन अव्यक्त, अविनाशी, अतीन्द्रिय, अतिदूर, अनन्त, आद्य, आत्मज्ञानज्ञ परब्रह्म परिपूर्ण परमेश्वर के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करता हुआ उनकी आर्तभाव से स्तुति करता हूँ।

जो सदा अपने लोक में विशुद्ध भाव से सदा सर्वदा सुख-सागर में शयन करते रहते हैं, जिनके अत्यन्त सूक्ष्म अंश से यह दृश्य प्रपञ्च नाम रूपात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है, उसी अंश मात्र से चतुर्मुख ब्रह्मा, समस्त देवगण, सभी वेद तथा स्थावर जंगम जीव बन गये हैं, और उस समय पर ये सब उन्हीं में उसी प्रकार लीन भी हो जाते हैं, जैसे अग्नि के विस्फुलिंग निकल कर पुनः उसी में मिल जाते हैं, सूर्य की किरणें सूर्य से ही निकल कर अन्त में उन्हीं में लीन हो जाती हैं। सारांश यही है कि वे यह विश्वविभूति उनके अंश से उत्पन्न होकर उन्हीं में फिर मिल जाती है, वे त्रिपादविभूति रूप से अक्षोभ्य निर्विकार समुद्र के

समान विशुद्ध बने रहते हैं अंश से सृष्टि रचना होते समय उनमें कुछ क्षोभ होता हो कुछ विकार आता हो सो भी बात नहीं। वे सदा एकरस बने रहते हैं। समय पाकर उन्हीं से महत्तत्त्व, बुद्धितत्व, अहंतत्व, मन इन्द्रियाँ तथा सम्पूर्ण भूत सभी देहों का गुण प्रवाह होता रहता है जैसे पर्वत से सदा सर्वदा सहस्रों नदियाँ निकलती रहती हैं। वे भगवान दुर्विज्ञेय हैं। उनके यथार्थ रहस्य को कोई नहीं जानता। उनकी न कोई जाति है, न वर्ण है न संज्ञा है और न नाम है। वे देवता भी नहीं, असुर भी नहीं, मनुष्य भी नहीं, तिर्यक पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, नपुंसक तथा अन्य कोई भी चर, अचर जीव नहीं। वे निराले हैं, विलक्षण हैं, अकथनीय हैं, जो हैं सोई हैं। न वे गुण हैं, न कर्म हैं न सत् हैं न असत् हैं। सारांश यह है कि संसार में जितनी वस्तु देखी, सुनी या कल्पना की जा सकती हैं उनमें से कोई नहीं जो सबके अन्त में यह नहीं यह नहीं कहते कहते शेष रह जाते हैं, वे ही वे हैं। जो वाणी के विषय नहीं, मन जिनके सम्बन्ध में मनन नहीं कर सकता, उन प्रभु की मैं शरण हूँ, वे मेरी इस विपत्ति से रक्षा करें, मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करें।

प्रभो ! आप सोचते होंगे, यह अपने प्राण बचाने के लिये प्रार्थना कर रहा है, मृत्यु से भयभीत हो गया है, अपने जीवन की भिक्षा माँग रहा है। स्वामिन ! मैं जीकर अब क्या करूँगा। इस घोर तमोगुणी गज योनि से मुझे कौन-सा सुख है ? यह योनि तो भीतर बाहर दोनों ही ओर अज्ञान से भरी हुई है। इसमें न मैं साधन कर सकता हूँ, न आपका भजन ही कर सकता हूँ, यही स्त्री पुत्रों का मोह था, सो उनका मोह तो देख लिया, मुझे विपत्ति में फँसा देखकर सब भाग गये। अब तो संसारी सम्बन्धों को समझ गया। प्रभो ! मैं यह भी नहीं चाहता गज योनि से मुक्त होकर मुझे कोई श्रेष्ठ योनि मिल जाय, मैं तो

अज्ञान से मुक्ति चाहता हूँ जिस अज्ञान ने आत्मप्रकाश को ढक लिया है, जो नाना उच्च नीच योनियों में भ्रमाता रहता है, उसी अज्ञान से मेरा छुटकारा करा दें। जहाँ काल की भी गति नहीं उस परमपद को पहुँचा दें, जन्ममरण के चक्कर से छुड़ा दें। इसीलिये मैंने आपके चरणों की शरण ली है। ग्राह से पैर छुड़ाइये या न छुड़ाइये, अज्ञान से मुझे छुड़ा दीजिये, ग्राह से मुक्त कीजिये या न कीजिये मोह की शृंखला जो मेरे पैरों में पड़ी है, उसे काट दीजिये। इसीलिये मैंने आपका पल्ला पकड़ा है।

हे अन्तर्यामी प्रभो! आप इस अखिल विश्व ब्रह्माण्ड के एकमात्र रचयिता हैं, यह चराचर विश्व ही आपका स्वरूप है, आप विश्व से परे विश्वातीत हैं, विरुद्ध धर्माश्रयी हैं, आत्माराम आत्मक्रीड आत्मरति होने पर भी विश्वरूप सामग्री से क्रीड़ा करने वाले विहारी हो। आपका कभी जन्म नहीं, नाश नहीं ह्रास नहीं, अभ्युदय नहीं, पतन नहीं उत्थान नहीं। आप जगदात्मा जगन्नियन्ता अजन्मा तथा अच्युत और एकरस हो। ऐसे आप विश्वविहारी को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

स्वामिन्! योगीगण विजन वन में जाकर योगाभ्यास द्वारा अन्तःकरण के मल को धो डालते हैं, विशुद्ध बन जाते हैं, उनका अन्तःकरण निर्मल बन जाता है, ऐसे योग द्वारा परिशुद्ध अन्तःकरण मे आप प्रकट होते हैं, उनके विमल मनमें प्रतिबिम्बित होते हैं उन बड़भागी शुद्धाशय योगियों को आप दर्शन देते हैं, मेरा अन्तःकरण तो शुद्ध नहीं हुआ है, मैं तो केवल आपके चरणों में नमस्कार ही करता हूँ।

प्रभो! आप अजितेन्द्रियों से सदा दूर रहते हैं मलिन अन्तःकरण वालों के लिये आपके दर्शन दुर्लभ हैं आप असह्यवेग वाली त्रिगुणात्मिका शक्तियों से युक्त हैं। इन्द्रियों के जो शब्दादि

विषय हैं उनके सदृश प्रतीत होते हैं, आप अपनी शरण में आये हुए अनन्योपासक, शरणागत भक्तों के दुःखों को दूर करने वाले हैं, उनके समस्त विपत्तियों से रक्षा करने वाले हैं, ऐसे अपरिमेय शक्तिवाले सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

देव ! यह जीव अज्ञान अन्धकार में भटक रहा है, मोहरूप ग्राह ने कसकर इसके पैर को पकड़ लिया है। आपकी ही त्रिगुण मयी माया ने एक अहङ्कार रूप ऐसी अन्धकारमयी यवनिका बना रखी है कि बुद्धि के समस्त प्रकाश को उसने ढक लिया है। इससे यह अपने यथार्थ स्वरूप से वंचित रह जाता है, अपने आत्म-रूप से अपरिचित सा बन जाता हैं, प्रभो ! आप ही जब चाहें इस परदे को हटा सकते हैं, आपही जब इच्छा करे प्रकाश प्रदान कर सकते हैं, आप ही मोहरूपी अभेद्य शृंखला को काट सकते हैं, आपके पादपद्मों में पुनः पुन प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार से जब गजेन्द्र ने स्तुति की तब भगवान् श्रीहरि ने तुरन्त वहाँ आकर ग्राह को मार कर गजेन्द्र को दुःख से छुडाया। यह मैंने आपसे गजेन्द्र कृत श्रीहरि की स्तुति कही, अब जैसे समुद्र मन्थन के पूर्व, असुरों द्वारा श्रीहीन किये हुए देवतागण ब्रह्माजी के सहित क्षीरसागर शायी भगवान के समीप गये, और वहाँ जैसे जाकर भगवान की स्तुति की उस स्तुति का वर्णन आगे करूँगा।"

छप्पय

नहिँ पशु तन मम मोह न जीवन इच्छा भगवन।
चाहूँ आतमप्रकाश लगे प्रभु चरननि महँ मन ॥
योगी करिकें जोग विमल हियमहँ जिनि ध्यावत।
तिनि योगेश्वर विश्वविहारी पद सिर नावत॥

विषय रूप बनि विश्वमहँ, मायामय क्रीड़ाकरें।
मेंटे मम पद मोह भय, दै दरशन दुख हरि हरें॥

पद

विपतितैं मोकूँ नाथ उबारें।
ग्राह नहीं यह काल कृपानिधि, डूबत पार उतारें॥१॥
जो न मनुज, सुर, असुर, अचर, चर, नाम न रूप निहारें।
गुन नहिँ करम असत् सत वेदहु, नेति नेति उचारें॥२॥
अच्युत ! आश करी जिन जिनकी, ते नहिँ विदित विदारें।
तजि सब आश शरन हरि लीन्हीं, सेवक करि स्वीकारें॥३॥
महिमा अपरम्पार तिहारी, नहिं मन बुद्धि विचारें।
अधम उधारन नाम तिहारो, प्रभु पशु पतित उधारें॥४॥

गजेन्द्रकृत हरि स्तुति (३)

गजेन्द्र उवाच

ॐनमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥१॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥२॥
यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं,
क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते,
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥३॥
कालेन पंचत्वमितेषु कृत्स्नशो,
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदाऽऽसीद् गहनं गभीरं,
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥४॥
न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुः,
जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो,
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥५॥
दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं,

विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने,
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥६॥
न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा,
न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः,
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥७॥
तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥८॥
नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥९॥
सत्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥१०॥
नमः शांताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥११॥
क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१२॥
सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१३॥
नमो नमस्तेऽखिलकारणाय,
निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।

सर्वागमाम्नायमहार्णवाय,
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१४॥
गुणारणिच्छन्नचितूष्मपाय,
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमः,
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१५॥
मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय,
मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत,
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१६॥
आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैः,
दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय,
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१७॥
यं धर्मकामार्थविमुक्ति कामा,
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं,
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१८॥
एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं,
वांछन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं,

गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥१९॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशम्,
अव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरम्,
अनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२०॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥२१॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो,
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो,
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२२॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्,
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्,
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥२३॥

जिजीविषे नाहमिहामुया किम्,
अन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवः,
तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२४॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२५॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ।।२६

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग,
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये,
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ।।२७।।

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ।।२८।।

ब्रह्मादि देवों द्वारा अजित स्तुति (१)

(६३)

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यम्,
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तम्,
नमाम हे देववरं वरेण्यम् ॥❀
(श्री भा० ८ स्क० ५ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

असुरनि तैं अति दुखित अमर अजके ढिंग आये।
लै कमलासन संग सबनि पयनिधि तट धाये॥
रूप रहित श्रुत रूप करी इस्तुति चतुरानन ।
जय अनन्त अव्यक्त, सत्य सुख परवानी मन॥
जो निद्रा तन्द्रा रहित, जो सब कारन करन हैं।
तिन अच्छर आकाश अज, अमर अजित की शरन हैं॥

सुख में तो कोई बड़भागी भगवत कृपा पात्र अनुग्रह सृष्टि के ही जीव भगवत् स्मरण करते हैं नहीं तो प्रायः देखा गया है,

---

❀ देवताओं की ओर से अजित भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी कह रहे हैं—"जो भगवान् अविक्रिय हैं सत्य हैं अनन्त हैं आदि पुरुष हैं, तथा बुद्धि रूपी गुहा में स्थित हैं । जो निष्कल, अप्रतर्क्य, मन से भी अधिक दौड़ने वाले वाणी के अविषय तथा भजन करने योग्य हैं उन देवाधिदेव भगवान् को हम सब नमस्कार करते हैं।"

जब आपत्ति विपत्ति आ जाती हैं तभी भगवान् याद आजाते हैं। यह भी सबको नहीं होता। ऐसा भी सत्वगुण सम्पन्न भगवत भक्तों को ही होता है। सर्व साधारण पुरुष तो आपत्ति में भी संसारी लोगों के ही संमुख गिड़गिड़ाते हैं अनुनय विनय करते हैं। कैसे भी समय किसी भी दशा में भगवान् का स्मरण होना बड़े भाग्य की बात है ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! देवता और असुरों का वैर भाव सनातन है। एक बार इन्द्र अपने हाथी पर चढ़कर जा रहे थे उधर से दुर्वासा मुनि आ रहे थे। देवराज को देखकर मुनि ने आशीर्वाद रूप अपने कंठ की माला उतार कर इन्द्र के ऊपर फेंक दी । इन्द्र के लिये यह साधारण बात थी । जिधर वे निकलते थे उधर ही देवता ऋषि मुनि उनपर पुष्प तथा मालायें फेंका करते थे । उन्होंने उस माला को भी साधारण समझकर हाथी के मस्तक पर रख दी। हाथी ने उसे सूँड़ से उठाकर पैरों के नीचे कुचल दी। ऐश्वर्य के मद में मत्त हुए देवराज ने इधर ध्यान ही नहीं दी। माला तथा उसे हाथी द्वारा कुचला जाना उनके लिये साधारण बात थी। बात भले ही साधारण हो किन्तु दुर्वासा तो साधारण मुनि नहीं थे । वे तो साक्षात् रुद्र का क्रोधका अवतार ही थे। उन्होंने इन्द्र को तुरंत शाप दे डाला—"जा जिस श्री के पीछे तू इतना मन्दोन्मत्त बना हुआ है तेरी वह श्री नष्ट हो जाय तू श्री हीन हो कर मारा मारा फिरे मुनिका शाप सुनकर सुरेन्द्र की तो सिटिल्ली भूल गयी तुरन्त हाथी पर से उतर कर वह मुनि के पैरों में पड़कर क्षमा याचना करने लगा । मुनि ने कहा—"देवेन्द्र ! तू मुझे अन्य ऋषि मुनिओं की भाँति मत समझो जो चाहें रो या पीट क्षमा करना तो मैंने सीखा ही नहीं तू श्री हीन अवश्य हो जायगा । तुम सब देवता ऐश्वर्य

हीन होकर भूमि पर साधारण मनुष्यों की भाँति घूमोगे, लो मैं तो चला। इतना कहकर मुनि चल गये। देवेन्द्र तुरन्त हतः प्रभे हो गये। असुरों ने स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी। देवता तो श्री हीन हो ही चुके थे इसी अवसर उन्होंने युद्ध छेड़ दिया। बहुत देवता मारे गये बहुत से युद्ध से भाग गये। असुरों की विजय हो गयी। तब देवता सब मिलकर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्मा जी जानते थे भगवान् स्तुति प्रिय हैं स्तुति सुन कर वे अवश्य प्रसन्न हो जाते हैं निराकार साकार से हो जाते हैं। इसीलिये वे उन सर्व व्यापी निराकार भगवान् की स्तुति करने लगे।

स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी कह रहे हैं—"प्रभो! आपनिर्वि कार हैं। कभी भी आप में विकृति नहीं आती। आप सत्य स्वरूप हैं सत्य सकल्प हैं जो भी कह देते हैं उसे करते हैं आप का जो भी संकल्प हुआ नहीं कि यह तुरन्ह पूर्ण हो जाता है। आपका कहीं भी अन्त नहीं आपकी शैया ही अनन्त है। आप का स्वरूप भी अनन्त है आपके धाम भी अनन्त हैं आपकी लीलायें भी अनन्त हैं और आप स्वरूप के रूप भी अनन्त हैं। आप आदि पुरुष हैं आप कब से उत्पन्न हुए कोई कह नहीं सकता। कह तो तब सके जब आप कभी उत्पन्न हुए हों आप तो अजन्मा हैं। अनादि हैं आदि पुरुष हैं। आप बिना खिड़की की गहरी बुद्धि नाम की गुफा में घुसे हुए बैठे रहते हैं। आप निरंजन हैं निष्कल हैं अप्रतर्क्य हैं। तर्कों द्वारा कोई आप को सिद्ध नहीं कर सकता। परम प्रगति शील हैं। सबसे शीघ्र दौड़ने वाला मन है। आप दौड़ में उसे भी परास्त कर देते हैं। वह आपके साथ एक पग भी नहीं दौड़ सकता। आपकी गति की कोई कल्पना नहीं कर सकता। वाणी आपके सम्बन्ध में कुछ भी कहने में असमर्थ है जैसे नानी के सामने धवती ननसाल की क्या

बात बतावेगी ? आप समस्त प्राणियों के एक मात्र भजनीय हैं। आप का ही सभी समान भाव से भजन कर सकते हैं। आप समस्त देवों के देव हैं महादेव हैं। देवाधिदेव हैं अतः समस्त देवताओं के सहित मैं आप को बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

प्रभो ! आप प्राणों के प्राण हैं बुद्धि के स्वामी हैं। अहंकार के अधिष्ठातृ देव हैं। सबके विज्ञाता हैं। वैसे तो आप मन वाणी के विषय नहीं तथापि शब्दादि विषय तथा इन्द्रियों से भासित होते हैं। आप देह नहीं देह है भी तो ऐसी जिसमें फोड़ा फुन्सी नहीं। विद्या नहीं अविद्या नहीं अज्ञान नहीं, निद्रा नहीं तन्द्रा नहीं आलस्य नहीं। आप निर्विकार निर्लेप अक्षर आकाश शरीरी तथा तीनों युगों में प्रकट भाव से रहने वाले हैं ऐसे आप त्रियुगी नारायण को हम पुनः पुनः प्रणाम करते हैं।

स्वामिन् ! आप इस संसार के आधार भूत चक्र हैं। आप के द्वारा ही यह संसार घूम रहा है संसरण कर रहा है। पिंड ब्रह्माण्ड को आप अपने आश्रय से घुमा रहे हैं इस चक्र में पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच कर्मेन्द्रिय और पंच प्राण ये पन्द्रह अरे है मन प्रधान अरा है। चक्र का जो बीच का भाग है। जिसे नाभि कहते हैं वही त्रिगुण हैं। चक्र की जो नेमि होती है आठ प्रतियाँ ही मानो नेमि स्थानीय हैं। वे ही उसके आवरण हैं यह चक्र अत्यन्त ही चंचल तथा विद्युत के समान प्रकाशवान् और शीघ्र गामी है। अजन्मा जीव के माया द्वारा प्रेरित शरीर के आधार हैं। आप सत्यरूप हैं ऐसे सर्वाधार प्रभु को बारम्बार वन्दन है।

प्रभो ! ज्ञान ही आप का स्वरूप है। आप प्रकृति से परे हैं। यह स्थूल दृष्टि आप को देखने में सर्वथा असमर्थ है आप अदृश्य तथा अव्यक्त हैं देश कालादि बन्धनों से अपरिच्छेद हैं।

जीव के नियन्ता हैं। एक वृक्ष पर बैठकर पिप्पली खाने वाले हैं। योग्यसाधक वैराग्य विवेक वान् पुरुष योग मार्ग से आप की उपासना करते हैं। देव आप की माया अपरम्पार है। इसी आपकी दुरत्यया दैवी माया के वशीभूत होकर जीव अपने आत्म स्वरूप से विस्मृत हो जाता है यह ठगिनी माया सब को ठग लेती है सबको जीत लेती है किन्तु आप के सम्मुख इस की कुछ नहीं चलती आपको यह नहीं जीत सकी। आपने ही इसे जीत लिया है आपने ही इस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। आप सभी चराचर प्राणियों में समान भाव से निवास करते हैं। आप परम ऐश्वर्यवान् हैं परमेश्वर हैं परात्पर हैं ऐसे आप मायेश को हम नमस्कार करते हैं।

हे दुर्विज्ञेय ! आप को पाना कोई सरल काम नहीं है तमोगुण तो अंधकार मय है रजोगुण कर्म प्रधान गुण है सत्व गुण प्रकाश मय ज्ञान प्रधान गुण है। ज्ञान के प्रकाश में आप का आभास कोई भले ही प्राप्त कर ले। हम लोग जो ऋषि मुनि देवतादि हैं सत्व प्रधान कहे जाते हैं किन्तु सत्ता रूप से समस्त प्राणियों के भीतर तथा प्रकाश रूप से चराचर के बाहर विराजमान आपके सूक्ष्म स्वरूप यथार्थ भाव से तो हम लोग भी नहीं जान सकते। फिर तमो गुणी तथा रजो गुणी असुर राक्षसों की तो बात ही पृथक रही। वे तो जान ही क्या सकते हैं। ऐसे अचिन्त्य अज्ञेय अच्युत को बारम्बार प्रणाम है।

स्वामिन् ! आप पृथिवी रूप हैं जलरूप हैं चन्द्रमा रूप हैं अग्नि रूप हैं सूर्य तथा प्राणरूप से अवस्थित हैं, आप महान् शक्तिशाली परम विभूति वान् हैं जिस पृथिवी पर अण्डे से उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि जरा नामक झिल्ली में बँधे हुए उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न

होने वाले वृक्षादि तथा स्वेद से उत्पन्न होने वाले जूंआदि चार प्रकार के जीव निवास करते हैं। जिस पृथिवी को आपने ही उत्पन्न किया है वह सबकी आधार भूता भू देवी आपके चरण स्थानी है। अतः वसुधा चरण रूप आप विश्वम्भर को प्रणाम। हे महाविभूति स्वरूप प्रभो ! हम सब पर आप प्र सन्न हो जायँ।

हे वीर्यवान् ! द्रवरूप में विस्तृत यह जल ही आपका वीर्य है। आपने सर्व प्रथम इस वीर्य रूप जल का ही सृजन किया। इसीसे सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई। समस्त लोक सम्पूर्ण लोक पालादिकों का उत्पत्ति स्थान जल ही है इसीको जीवन भी कहते हैं उत्पत्ति ही नहीं वृद्धि भी जल के बिना संभव नहीं। सब की वृद्धि का कारण भी जल ही है। समस्त शक्तियों का स्रोत जल ही है ऐसे नार वीर्य परम ऐश्वर्य शाली महान् ऐश्वर्य सम्पन्न परम ब्रह्म परमात्मा मुझपर प्रसन्न हों।

हे महामनस्वी ! चन्द्रमा ही आपका मन है वह सोम ही देवताओं का बल है उनका अन्न है और आयु का मायक देव भी वही है। जो वृक्षों का ओषधियों का अधीश्वर है प्रजाओं की अभिवृद्धि भी उसीके अधीन है। पुत्र को ही आत्मा बताया है आपके मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। इसी लिये चन्द्रमा को ही आप का मन बताया है। हे सोममन भगवन् ! आप परम ऐश्वर्यशाली प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः पुण्य प्रणाम है।

भगवन् ! अग्निदेव आपके मुख हैं। मुख से उत्पन्न हुई अग्नि में हवन होता है यज्ञयागादि कर्म काण्ड सम्बन्धी कार्य होते हैं। ब्राह्मण भी आपके मुख से उत्पन्न हुए हैं। अतः विप्र मुख में भी हवन किया जाता है। अन्तर इतना ही है कि अग्नि में कच्चे जव तिल चावल तथा घृत आदि से हवन

होता है और विप्र मुख में घृत से बने संयाव हलुआ आदि से हवन किया जाता है। ब्राह्मण के मुख में ही अग्नि नहीं है। सभी प्राणियों के उदर में जठराग्नि रूप से अग्नि का वास है। वह खाये हुए अन्न जल का तथा सभी धातुओं को पचाती है समुद्र में वह वडवा नल रूप से रहती है जो समुद्र के जल को पचाकर उसे बढ़ने से रोकती है। सम्पूर्ण द्रव्यों की उत्पत्ति का कारण भी अग्नि ही है। ऐसे परम ऐश्वर्य सम्पन्न आप जात वेदानन परब्रह्म परमात्मा के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे सर्वद्रष्टा ! सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करने वाले भगवान् भुवन भास्कर आपके नेत्र हैं। आप के नेत्रों से ही सूर्य की उत्पत्ति है जो सूर्य अर्चिरादि मार्ग के अधिष्ठातृदेव हैं तीनों वेद ही जिनका स्वरूप है पर ब्रह्म की उपासना के आश्रय हैं। मुक्ति के द्वार हैं समस्त पुण्यों के एक मात्र आश्रय होने से पुण्य स्वरूप तथा सभी जीवों की आयु निर्धारक होने से कालात्मक होने से मृत्यु स्वरूप है। ऐसे सूर्य चक्षु परम ऐश्वर्यवान् भगवान श्री हरि हम पर प्रसन्न हों।

हे प्राणात्मक प्रभो ! आप प्राणों के भी प्राण हैं। आप के प्राण से ही प्राण वायु की उत्पत्ति हुई है जो प्राण सम्पूर्ण विश्व में जीवन का द्योतक है। स्थूल सूक्ष्म स्थावर जंगम चर अचर समस्त जीवों में सह ओज और बल रूप से रहता है। जितने हम अधिष्ठातृ देव हैं उस प्राण का उसी प्रकार अनुगमन करते हैं जिस प्रकार सम्राट का उसके सेवक करते हैं। जहाँ प्राण हैं वहीं इन्द्रिय तथा उनके अधिष्ठातृ देव क्रियाशील होते हैं। प्राणों के चले जाने पर सब चले जाते हैं। उस जीवन प्रधान प्राणों के भी जनक हैं उन्हीं आप परम ऐश्वर्य शाली महा विभूति भगवान् हम पर प्रसन्न हो हम पर कृपा करें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की अब वे आगे भी जिस प्रकार स्तुति करेंगे, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आप सब सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

पृथिवी प्रभु पद कहे सकल आधार जगत तें।
जग जीवन जल वीर्य जीव प्रकटें जिन सततें।
जिनको मन है सोम प्रजातरु द्विजके स्वामी।
आनन अगिनि अखंड अखिल अग अन्तरयामी॥
मृत्यु अमृतमय रवि नयन, प्राननि के जो प्रान हैं।
हौं प्रपन्न पर पुरुष प्रभु, देहिँ दया को दान हैं॥

पद

जयति जय जगदीश्वर अविनाशी।
निराकार निरलेप निरंजन, निष्कल नित्य निवासी॥१॥
ज्ञापक ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता सब, तारक तत्वाकाशी।
देह चक्र आधार अखिल पति, उतपति थिति जगनाशी॥२॥
अविगत, अलख, अगोचर, अद्वय, अगुन अखिल गुन राशी।
करि करि तरक थके सब तर्को, पावें पद विश्वासी॥३॥
पृथिवी पद वीर्य जल जिनिको, मन शशि परम प्रकाशी।
आनन अगिनि नयन रवि हरिके, प्राननि प्रान निवासी॥४॥
परम प्रकाशक परपद पालक, प्रभु परमात्म सदासी।
व्यापक विश्व विदित विश्वम्भर, विश्वभरण प्रभु वासी॥५॥

—:o:—

ब्रह्मादि देवों द्वारा अजित स्तुति(२)

(६४)

श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि,
प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मा सुशरीर केतम्,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥*

(श्री भा० ८ स्कं० ५ अ० ३८ श्लो०)

छप्पय

दिशा कान त भई' हिये तैं इन्द्रिय गोलक ।
मन असु इन्द्रिय प्रान नाभितैं तनके चालक ॥
सुर प्रसाद बल इन्द्र क्रोध हर ब्रह्मा धी तैं ।
करननितैं ऋषि वेद प्रजापति शिश्नोदर तैं ॥
हिय श्री छाया पितर थन, धरम पीठ अधरम भयो ।
प्रभु होवैं हम पर सदय, क्रीड़ाथल जिनि जग कह्यो ॥

सबको भगवत रूप समझकर सर्व भाव से उसके सम्मुख नत हो जाना यही स्तुति का उद्देश्य है। सब कुछ भगवान् से ही

---

* स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी कह रहे हैं—"जिनके कानों से दिशायें हुई' हृदयसे इंद्रियाँ नाभि से प्राण इंद्रिय मन असु और शरीराश्रय आकाश हुआ वे परम ऐश्वर्य सम्पन्न महाविभूति भगवान् हम सब पर प्रसन्न होवें।"

उत्पन्न हुआ है, सब भगवान् का है स्वरूप है इसी भाव से भगवत् प्रार्थना करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अजित भगवान् की स्तुति करते हुए आगे श्री ब्रह्मा जी कह रहे हैं—प्रभो! आप सर्वमय हैं, सभी की उत्पत्ति आप से हुई है, सब के जनक आप ही हैं। आप के कानों से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय कोण, वायव्य कोण, ईशान कोण, नैऋत्य कोण तथा ऊपर नीचे ये दशों दिशायें उत्पन्न हुई हैं। हृदय से समस्त इन्द्रियोंके गोलक उत्पन्न हुए हैं। आपकी नाभि से प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ये पंच प्राण दश इन्द्रियाँ, मन, नाग, कूर्म, कृकल देवदत्त और धनंजय ये असु तथा वह आकाश उत्पन्न हुआ है जो समस्त शरीरों का आश्रय है, ऐसे आप सर्व स्वरूप परम ऐश्वर्यवान् प्रभु हम सबके ऊपर प्रसन्न हों हमें सत् शिक्षा दें, शुभ सन्मति दें।

स्वामिन्! आप का जो बल है उसी से इन्द्र की उत्पत्ति हुई है। आप की जो प्रसन्नता है, आह्लाद है उसी के द्वारा समस्त देवतागण प्रकटित हुए हैं, आप के क्रोध से रुद्रदेव की उत्पत्ति है, बुद्धि से विश्व विधाता ब्रह्मा बाबा बने हैं। ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान स्वरूप चारों वेदों की तथा कर्मेंद्रियों से कर्म परायण ऋषियों की उत्पत्ति हुई है। शिश्नेन्द्रिय से प्रजा की वृद्धि करने वाले प्रजापति प्रकट हुए हैं। ऐसे सबके जनक सबके प्रतिपालक सबके संहर्ता परम ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभु हम पर प्रसन्न होवें।

हे देव! आप के विशाल वक्षःस्थल से सदा सर्वदा संग रहने वाली आप की चिर संगिनी भगवती लक्ष्मी जी उत्पन्न हुई हैं। आप के शरीर की छाया से पितर गण पैदा हुए हैं। स्तन प्रदेश से सब को धारण करने वाला धर्म उत्पन्न हुआ है और पृष्ठ प्रदेश से उसका विपक्षी अधर्म पैदा हुआ है। हे सर्वज्ञ।

आप के सिर पर आकाश की उत्पत्ति हुई है, आप का जो लीला विहार है उससे अप्सरायें उत्पन्न हुई हैं, जो स्वर्गीय पुरुषों के साथ विहार करती हैं। भगवन्! आप परम ऐश्वर्य-शाली हैं, महाविभूति हैं हम पर आप प्रसन्न हो जावें।

हे ब्रह्मण्यदेव! आपके मुख से सब से श्रेष्ठ वर्ण वाले ब्राह्मण हुए हैं, या कहना चाहिये आप का मुख ही ब्राह्मण है, ब्राह्मणों का और वेदों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। वेद के आश्रय से ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण के आश्रय से वेद हैं, अतः गुह्यार्थ को प्रकटित करने वाला वेद भी आप के मुख से ही उत्पन्न हुआ। आपत्तियों से बचाने वाले प्रजा की रक्षा करने वाले क्षत्रियों का जन्म आपके बाहुओं से भुजाओं से हुआ है। क्षत्रियों का जो मुख्य आश्रय बल है, वह भी क्षत्रियों के पास बाहुओं से ही उत्पन्न हुआ। कृषि गो रक्ष और वाणिज्य यह वृत्ति और इससे आजीविका चलाने वाले वैश्यों का जन्म आपके उरुओं जंघाओं से हुआ। आप के चरणों से उन शूद्रों की उत्पत्ति हुई जो सेवा परायण हैं 'त्रिवर्ण' की शुश्रूषा ही जिनकी वृत्ति है और जो वेदाध्ययन आदि शौचाचार युक्त क्लिष्ट कर्म से निर्मुक्त हैं। जिनकी सुगति केवल शुश्रूषा से ही हो सकती है। आप उनकी सेवा से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, ऐसे आप परम ऐश्वर्य शाली प्रभु हम सब पर प्रसन्न हो जायँ।

प्रभो! संसार में जो भी गुण अवगुण हैं, सबके आश्रय आप ही हैं, आप से ही सबकी उत्पत्ति है। मुख में ऊपर नीचे के दो ओष्ठ होते हैं नीचे ओष्ठ का नाम अधर है ऊपर को ओष्ठ ही कहते हैं। सो, अधर से तो लोभ का उत्पत्ति हुई है और ओष्ठ से प्रीति प्रकटित हुई है। नासिका से कान्ति और स्पर्शेन्द्रिय से उस काम की उत्पत्ति हुई है जो पशुओं को-जीवों को-

अत्यंत ही प्रिय है। आप की टेढ़ी भ्रुकुटियों से सबसे नियमन कर्ता यमराज उत्पन्न हुए हैं तथा संपूर्ण प्राणियों का संहार करने वाले कालदेव का आविर्भाव आप के पुनीत पलकों से हुआ है। ऐसे आप सर्व शक्ति सम्पन्न महाविभूति शाली सर्वेश्वर हम सब पर सदय हों, प्रसन्न हों।

स्वामिन्! कहाँ तक गिनावें संसार में जो भी कुछ देखा सुना जाता है, इनसे इस जगत की स्थिति है' जैसे पंचभूत, काल कूर्म सत्व रज तथा तम ये तीनों गुण और यह जो दृश्यमान भौतिक प्रपंच है, जिसे बुध जन नेति नेति कहकर अनात्म रूप से त्यागने योग्य बताते ये सभी आप की योग माया द्वारा ही उत्पन्न हुए कहे जाते हैं, इन सब की उत्पत्ति आप से ही बतायी जाती है, ऐसे आप सर्व शक्ति सम्पन्न महाविभूति शाली विश्वेश्वर हम सब पर प्रसन्न हों।

प्रभो! आप में चंचलता नहीं चंचला होती है रजो गुण से। आप तो गुणातीत हैं उपशान्त शक्ति हैं, आप की सम्पूर्ण शक्तियाँ शान्त हो गयी हैं, आप को आनन्द का उपकरण अन्यत्र खोजना नहीं पड़ता आप नित्य निरंतर निजानन्द में निमग्न रहते हैं। आपका अन्तःकरण आत्मानन्द लाभ से निरंतर परिपूर्ण रहता है। आप मन की वृत्तियों द्वारा मायिक गुणों से बँधते नहीं उनमें संसक्त नहीं होते। जैसे वायु सर्वत्र समानभाव से विचरते हैं सुगन्ध दुर्गन्ध युक्त सभी स्थानों में जाते हैं, किन्तु उनमें आसक्त नहीं होते, इसी प्रकार आप भी इस संसार में असंगभाव से भाँति भाँति की क्रीड़ायें करते रहते हैं, किन्तु उनमें आसक्त नहीं होते। अनासक्त होकर मनोविनोद सा करते रहते हैं, ऐसे आप प्रभु के पाद पद्मों में हम सब का पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! यद्यपि आप सर्वव्यापक है, सर्वत्र विराजमान हैं,

आप को न कहीं से आना पड़ता है, न कहीं जाना पड़ता है, भक्ति भाव से भक्तगण जहाँ भी पुकारते हैं, वहीं प्रकट हो जाते हैं। सर्वान्तर्यामी रूप को तो हम देख नहीं सकते उसके दर्शन नहीं कर सकते। हमें तो आप अपना सुंदर सरस साकार शरीर दिखाइये। उस मुखारविन्द की झाँकी कराइये जिसके ऊपर मंद मंद मुस्कान छिटक रही हो। हम आप के दास हैं, भक्त हैं, किंकर हैं आप की शरण में आये हैं, आप के द्वार पर दर्शनों की अभिलाषा से खड़े हैं। हमें अपना ऐसा दर्शन दीजिये जो हमारी इन्द्रियों का विषय हो सके। जिससे हम दो दो बातें कर सकें अपने नयनों को दर्शनानन्द से परितृप्त कर सकें।

प्रभो! आप यह तो कह ही नहीं सकते; हम निर्गुण निराकार, निरवयव तथा निरेन्द्रिय हैं, हम सगुण साकार सशरीरी कैसे बन सकते हैं? सो प्रभो यह सबतो सत्य ही है, इसके साथ आप करुणा के सागर भी तो हैं, दया के सिन्धु भी तो हैं, भक्तवत्सल हैं, आप भक्तों पर कृपा करने के निमित्त अपनी भक्तवत्सलता प्रकट करने के लिये समयसमय पर स्वेच्छा से भिन्न भिन्न रूप रखलेते हैं। विभिन्न देहों में प्रादुर्भूति होकर ऐसी ऐसी क्रीड़ायें करते हैं, जो हमारी बुद्धिके बाहर की बात कही जाती है, ऐसे ऐसे दुष्कर, विचित्र कर्म करते हैं, जिनका करना हम देवताओं के लिये भी अत्यन्त कठिन है।

भगवन्! कर्म तो सभी दोष युक्त हैं, कर्म पंडित, मूर्ख, ज्ञानी अज्ञानी सभी करते हैं, अन्तर इतना ही है, कि विषयासक्त अज्ञानी पुरुष जो कर्म करते हैं वे क्लेशकारक सार हीन तथा निष्फल होते हैं, वे जगत् बन्धन को दृढ़ करनेका कारण बन जाते हैं, किन्तु जो विज्ञजन कर्म करके उन सबको आप को अर्पण करदेते हैं, उनका कुछ भी फल नहीं चाहते। ऐसे

निष्काम कर्म करने वाले सर्व समर्थक पुरुषों के कर्म निष्फल सारहीन तथा बन्धन का कारण नहीं होते।

प्रभो! आप जीवोंके सच्चे सखा हैं, अत्यंत प्रिय सुहृद हैं, उनकी आत्मा हैं हितैषी हैं, आपको जो तनिक सा कर्म भी समर्पित किया जायगा वह फिर भला विफल कैसे हो सकता है। आप अनन्त को समर्पित करने से तो वह अनन्त बन जायगा। आपके लिये किया हुआ स्वल्प कर्म भी विफल नहीं होता।

यद्यपि हम देवगण, मनुष्य पितृ यक्ष गन्धर्व तथा समस्त चराचर आपके ही रूप हैं, जैसे वृक्षके स्कन्ध, शाखा, उप-शाखा तथा पत्तियाँ फल फूल आदि वे वृक्षसे पृथक् नहीं हैं, सभीको आहार जड़से ही मिलता है। वृक्षका उपसेचन करना है, पूजन करना हो उसे पानी पिलाना हो तो डाली डाली का पूजन करने की कोई आवश्यकता नहीं। पत्ते पत्ते पर पानी फेंकने से कोई प्रयोजन नहीं। उसकी जड़में पानी देदो, सबको पानी मिल जायगा सब तृप्त हो जायँगे, पूरा वृक्ष हरा भरा हो जायगा। इसी प्रकार सब की जड़तो आपही हैं, सबके मूल कारण तो आप सर्वेश्वर ही हैं आपकी पूजा करनेसे सभी देवताओं की, सभी प्राणियोंकी यहाँ तक कि अपनी भी पूजा हो जाती है। सभी तृप्त होजाते हैं। वर्षाका जल कहीं भी गिरे वह पहुँचेगा समुद्रमें ही। किसी को नमस्कार करो आपके ही पास पहुँचेगा। क्योंकि आप ही तो सबके मूल भूत हैं।

हे देवाधिदेव! आपकी महिमा अनन्त है, आपका प्रभाव अचिन्त्य है, आपके कर्म अद्भुत हैं। आप निर्गुण होनेपर भी समस्त गुणों के एकमात्र आधार हैं। गुणोंके स्वामी हैं अधीश्वर हैं। इस समय सत्व गुणका अवलम्ब लेकर तान दुपट्टा सो रहे हैं, प्रभो! हम विपत्तिके मारे आपके द्वारे आये हैं, आप उठकर बैठिये हमारी ओर देखिये और हमें अपने दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये। आपके चरणारविन्दों में बारम्बार नमस्कार है।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! देवताओं की ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने देवताओं के दुख दूर किये, यह मैंने देवताओं की स्तुति आपसे कही। अब जैसे भगवान् के प्रकट होने पर ब्रह्माजी ने प्रेम में भरकर स्तुति की उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

विप्र, छत्र, विश, शूद्र भये मुख, भुज, उरु पदतैं।
लोभ, प्रीति अधरोष्ठ नाक यत काम परसतैं॥
भौंह पलक यम काल जगत माया वश जिनकी।
जो समरथ सरबग्य करें हम इस्तुति तिनकी॥

जो निरगुन निरलेप है, करैं सृष्टि थिति अरु प्रलय।
देवैं दरसन सगुन बनि, अजित करैं हमकूँ अभय॥

पद

प्रभु तुम निरगुन सगुन कहाओ।
ह्वै साकार फेर अँग अँग तें जग प्रपंच फैलाओ ॥१॥
सिर आकाश नयन रवि शशि मन मुखतें द्विज प्रकटाओ।
क्षत्रिय बाहु हियेतें कमला नाभि प्रान उपजाओ ॥२॥
शिश्न प्रजापति वैश्य जाँघतें पदतें शूद्र बनाओ।
काल भ्रुकुटितें काम परसतें मायातें रचवाओ ॥३॥
सबतें अलग सबनि में बसिकें माया जाल पुराओ।
क्रीड़ा करो असंग भावतें जीवनिकूँ भरमाओ ॥४॥
नाम, रूप, गुन, देह, धरम, मम सबतें पृथक खिलाओ।
द्वारे खड़े दयानिधि दरसन, देउ दया दिखलाओ ॥५॥
मुख अति मधुर मनोहर मधुमय मंद मंद मुसकाओ।
हे घनश्याम! सरस सुख सागर अमृत वारि बरसाओ ॥६॥

ब्रह्मकृत अजित स्तुति (२)

ब्रह्मोवाच

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं,
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम्।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं,
नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥१॥

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनाम्,
अर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम्।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ,
तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२॥

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं,
मनोमयं पञ्चदशारमाशु।
त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि,
यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥३॥

य एकवर्णं तमसः परं तद्,
अलोक्यमव्यक्तमनन्तपारम्।
आसाञ्चकारोपसुपर्णमेनम्,
उपासते योगरथेन धीराः ॥४॥

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां,

यया जनो मुह्यति वेद नार्थम्
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं,
नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥५॥
इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा,
सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे,
कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥६॥
पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य,
चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः,
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥७॥
अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यम्,
सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः,
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥८॥
सोमं मनो यस्य समामनन्ति,
दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः ।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानाम्,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥९॥
अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा,
जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।

अन्तःसमुद्रेऽनुपचन् स्वधातून्,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१०॥

यच्चक्षुरासीत् तरणिर्देवयानम्,
त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।

द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥११॥

प्राणादभूद् यस्य चराचराणां,
प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ।

अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१२॥

श्रोत्राद् दिशो यस्य हृदयश्च खानि,
प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।

प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१३॥

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादात्,
मन्योर्गिरीशोधिषणाद् विरिञ्चः ।

खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्तः कः,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१४॥

श्रीर्वक्षसः पितरश्छायायाऽऽसन,
धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।

द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्,

प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१५॥
विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं,
राजन्य आसीद् भुजयोर्बलं च।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१६॥
लोभोऽधरात् प्रीतिरुपर्यभूद् द्युतिः,
नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः,
प्रसीदतां न स महाविभूतिः ॥१७॥
द्रव्यं वयः कर्म गुणान् विशेषम्,
यद्योगमायाविहितान् वदन्ति।
यद् दुर्विभाव्यं प्रबुधापवाधं,
प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥१८॥
नमोऽस्तु तस्मा उपशान्त शक्तये,
स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिः,
न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥१९॥
स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥२०॥
तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो।
कर्म दुर्विपहं यन्नो भगवांस्तत् करोति हि ॥२१॥

क्लेशभूर्य्ल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥२२॥
नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ॥२३॥
यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषात्मनश्च हि ॥२४॥
नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥२५॥

महाभारत के प्राण महात्मा कर्ण

(चतुर्थ संस्करण)

अब तक आप दानवीर कर्ण को, कौरवोंके पक्षका एक साधारण सेनापति ही समझते होंगे। इस पुस्तकको पढ़कर आप समझ सकेंगे, वे महाभारत के प्राण थे। भारतके सर्वश्रेष्ठ शूरवीर थे, उनकी महत्ता, शूरवीरता, आजस्विता, निर्भीकता, निष्कपटता और श्रीकृष्णके प्रति महती श्रद्धाका वर्णन इसमें बड़ी ही ओजस्वी भाषामें किया है। ३०० पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य केवल २॥।) दो रुपये बारह आने मात्र है, शीघ्र मंगाइये।

मतवाली मीरा

भक्तिमति मीराबाईका नाम किसने न सुना होगा। उनके पद पदमें हृदयकी वेदना है अन्तःकरणकी कसक है। ब्रह्मचारीजीने मीराके भावोंको बड़ी ही रोचक भाषामें स्पष्ट किया है। मीराके पदोंकी, उसके दिव्य भावोंकी नवीन ढंगसे आलोचनाकी है, भक्ति शास्त्रकी विशद व्याख्या है, प्रेम के निगूढ़ तत्वको मानवी भाषामें वर्णन किया है। मीराबाईके इस हृदय दर्पणको आप देखें और बहिन, बेटियों, माता तथा पत्नी सभीको दिखावें। आप मतवाली मीराको पढ़ते पढ़ते प्रेममें गद्‌गद्‌ हो उठेंगे। मीराके ऊपर इतनी गंभीर आलोचनात्मक शास्त्रीय ढंगकी पुस्तक अभी तक नहीं देखी गयी। २२४ पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य २) दो रुपये मात्र है। मीराबाईका जहरका प्याला लिये चित्र बड़ा ही कलापूर्ण है।

हिन्दु धर्म और हिन्दी-साहित्यमें युगान्तकारी

धार्मिक प्रकाशन

"भागवती कथा"

देश के विभिन्न विद्वानों नेताओं और पत्रकारों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित। इसके लेखक हैं

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी।

इसे पढ़कर आप

१—श्रीमद्भागवत तथा अन्यान्य पुराणों की कथाओंका रहस्य सरलता और घरेलू ढङ्गसे समझेंगे। दैनिक जीवनको सात्विक, धार्मिक और राष्ट्रीय जीवन [illegible] निर्मित करेंगे।

[illegible] लिये नहीं, जीवन-

[illegible]

४—श्रेय और प्रेय, योग और भोग एक साथ सम्पादन करने प्राप्त करने की-शिक्षा घर बैठे प्राप्त करेंगे।

५—जननी जन्मभूमि की महत्ता को समझकर स्वधर्म, स्ववर्ण, तथा स्वदेश के प्रति निष्ठावान् बनेंगे।

इस अभूत-पूर्व ग्रन्थमें १०८ भाग होंगे।

प्रति मास एक भाग प्रकाशित करने की योजना चल रही है। अब तक ६९ भाग छप चुके हैं। २५० पृष्ठोंके प्रत्येक सचित्र भागकी दक्षिणा १) है।

१४॥।=) वार्षिक प्रदान करनेपर १२ भाग बिना डाकव्यय के आपके घर रजिस्ट्रीसे पहुँच जायँगे।

प्राप्तिस्थान

संकीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी लिखित पुस्तकें

१—भागवती कथा—(१०८ खण्डों में, ६५ खण्ड छप चुके हैं।) प्रति खण्ड का मूल्य १।), दस आना डाकव्यय पृथक्।

२—श्री भागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठकी, सजिल्द मूल्य ५।)

३—बदरीनाथ दर्शन—बदरीयात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मूल्य ४)

४—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० ३५०, मू० २॥)

५—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मूल्य २)

६—नाम संकीर्तन महिमा—भगवन्नाम संकीर्तन के सम्बन्ध में उठने वाले तर्कों का युक्ति युक्तपूर्ण विवेचन। मूल्य ॥)

७—श्री शुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मूल्य ॥)

८—भागवती कथा की बानगी—(आरंभके तथा अन्य खंडों के कुछ पृष्ठों की बानगी) पृष्ठ संख्या १०५, मूल्य ।)

९—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मूल्य ।-)

१०—मेरे महामना मालवीयजी और उनका अन्तिम सन्देश—मालवीयजी के जीवनके सुखद संस्मरण। पृष्ठ ११०, मूल्य ।)

११—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दु हिन्दु बन सकते हैं? इसका शास्त्रीय विवेचन। पृष्ठ सं० ५६ मूल्य ।-)

१२—प्रयाग महात्म्य—मूल्य -) एक आना।

१३—वृन्दावन माहात्म्य—मूल्य -)

१४—राघवेन्दु चरित—(भागवतचरितसे ही पृथक् छापा गयाहै।) मू० ।-)

१५—प्रभु पूजा पद्धति—मूल्य =)

१६—श्री चैतन्य चरितावली—प्रथम खण्ड १)

१७—भागवत चरित की बानगी—भागवत चरित के कुछ अध्यायों का नमूना—मू० -)

—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) प्रयाग।